Centre for Distance & Online Education

(CDOE)

Bachelor of Arts

(B.A. 1st year)

Hindi 1st Semester-1

C24HIN101T

हिन्दी साहित्य - 1

Discipline Specific Course (DSC)

Guru Jambheshwar University of Science & Technology

HISAR-125001

CONTENTS

हिन्दी अनिवार्य

हिन्दी साहित्य - 1 (प्रथम सेमेस्टर)

Course Code : C24HIN101T

External Marks : 70

Internal Marks : 30

Exam Time : 3 Hrs Total Marks : 100

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
	इकाई --- 1	
1	हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन परम्परा एवं काल विभाजन	3 - 31
2	आदिकाल का नामकरण व आदिकाल की परिस्थितियाँ	32 - 63
	इकाई --- 2	
1	भक्तिकाल की परिस्थितियाँ	64 - 86
2	संत काव्य की प्रवृतियाँ	87 - 116
3	कबीर का साहित्यिक परिचय तथा कबीर के दोहे	117 - 136
	इकाई ---3	
1	काव्य के तत्व	137 - 166
2	रस का स्वरूप, अवयव , रस के भेद एवं रस निष्पत्ति	167 - 196
	इकाई --- 4	
1	भाषा की परिभाषा तथा भाषा के विविध रुप : बोली ,मानक भाषा ,राष्ट्रभाषा ,माध्यम - भाषा ,मातृभाषा	197 - 219
2	मानक भाषा की परिभाषा तथा मानक भाषा की प्रमुख प्रवृतियाँ	220 - 241

दूरवर्ती शिक्षा निदेशालय, गुजविप्रौवि

कोर्ड कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या : 1	Vetter : Dr. कमलेश देवी
हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन परम्परा एवं काल विभाजन	

1 : हिन्दी साहित्य इतिहास-लेखन परम्परा एवं हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन

1 .0 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

1.1 प्रस्तावना

1.2 पाठ का मुख्य भाग

1.2.1 साहित्य इतिहास : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.2.2 साहित्येतिहास लेखन की आवश्यकता एवं महत्त्व

1.2.3 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन का उद्भव

1.2.4 हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की प्रारम्भिक परम्परा

1.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

1.3.1 हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में विभिन्न विद्वानों का योगदान

1.3.2 आधुनिक हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1.3.3 हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन

1.3.4 काल-विभाजन के प्रमुख आधार

1.3.5 विभिन्न विद्वानों के मतानुसार काल-विभाजन

1.3.6 साहित्य इतिहास लेखन और कल विभाजन का सम्बन्ध

1.3.7 समकालीन इतिहास-दृष्टि

1.3.8 काल-विभाजन की उपयोगिता एवं उपलब्धियां

1.4 अपनी प्रगति जाँचें

1.5 सारांश

1.6 मुख्य शब्द एवं अर्थ

1.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1.8 अपनी प्रगति जाँचें के उत्तर एवं स्व-मूल्यांकन के संकेतात्मक उत्तर

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 अधिगम उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद विद्यार्थी–

1. इतिहास के अर्थ, स्वरूप और उद्देश्य को समझ सकेंगे।

2. साहित्य के इतिहास-लेखन की आवश्यकता और उपयोगिता स्पष्ट कर सकेंगे।

3. हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की प्रारम्भिक परम्परा से परिचित हो सकेंगे।

4 . हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में विभिन्न विद्वानों के योगदान को समझ सकेंगे।

5. हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन की संकल्पना को समझ सकेंगे।

6. काल-विभाजन के आधारों की पहचान कर सकेंगे।

7. विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत काल-विभाजन की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।

8. साहित्यिक इतिहास और काल-विभाजन के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे।

9. इतिहास-लेखन की विभिन्न दृष्टियों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

10. हिन्दी साहित्य के विकास को ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों में देखने की क्षमता विकसित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

साहित्य किसी समाज की केवल मनोरंजन संबंधी अभिव्यक्ति नहीं है। उसमें किसी युग के विचार, संवेदनाएँ, सामाजिक परिस्थितियाँ, धार्मिक विश्वास, राजनीतिक घटनाएँ, सांस्कृतिक मूल्य और जीवन-दृष्टि विभिन्न रूपों में दिखाई देती हैं। इसलिए साहित्य को समझने के लिए उसके रचनात्मक स्वरूप के साथ-साथ उसके विकास-क्रम को जानना भी आवश्यक है। जब हम किसी भाषा के साहित्य की यात्रा को उसके आरम्भ से लेकर विभिन्न युगों में हुए विकास तक क्रमबद्ध रूप से देखते हैं, तब साहित्य का इतिहास सामने आता है। साहित्य इतिहास हमें यह समझने में सहायता करता है कि किसी समय विशेष में किस प्रकार की रचनाएँ लिखी गईं, किन साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, साहित्य में कौन-सी

प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं और उनके पीछे कौन-सी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ कार्य कर रही थीं।

हिन्दी साहित्य का विकास भी एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। हिन्दी का साहित्य अनेक भाषिक रूपों, बोलियों, साहित्यिक प्रवृत्तियों और सांस्कृतिक परम्पराओं से होकर विकसित हुआ। इसके इतिहास को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग समय में किया। प्रारम्भिक इतिहास-लेखन में कवियों और उनकी रचनाओं का परिचय प्रमुख रहा, जबकि बाद में साहित्य को सामाजिक, ऐतिहासिक और विचारधारात्मक संदर्भों में देखने की प्रवृत्ति विकसित हुई।

हिन्दी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए काल-विभाजन भी अत्यंत आवश्यक है। साहित्य का विकास निरंतर चलता रहता है, फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए उसे विभिन्न कालों या युगों में बाँटा जाता है। प्रत्येक काल की अपनी प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, भाषा-शैली और जीवन-दृष्टि होती हैं। काल-विभाजन का उद्देश्य साहित्य को कृत्रिम सीमाओं में बाँधना नहीं, बल्कि उसके विकास-क्रम को व्यवस्थित ढंग से समझना है।

इस पाठ में हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की परम्परा तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन–दोनों का समन्वित अध्ययन किया जाएगा।

1.2 पाठ का मुख्य भाग

1.2.1 साहित्य इतिहास : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

'साहित्य इतिहास दो शब्दों से मिलकर बना है–'साहित्य' और 'इतिहास'। साहित्य से आशय किसी भाषा में रचित काव्य, गद्य, नाटक, कथा, निबंध, आलोचना आदि रचनात्मक सामग्री से

है। इतिहास का सामान्य अर्थ है–अतीत की घटनाओं और विकास-क्रम का क्रमबद्ध अध्ययन।

इस प्रकार साहित्य इतिहास का सामान्य अर्थ किसी भाषा के साहित्य के उद्भव, विकास, परिवर्तन और विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों का ऐतिहासिक अध्ययन है।

लेकिन साहित्य का इतिहास केवल रचनाओं और रचनाकारों की सूची नहीं है। यदि हम केवल यह बताते जाएँ कि किस कवि ने कौन-सी पुस्तक लिखी, तो उससे साहित्य का पूर्ण इतिहास निर्मित नहीं होता। साहित्येतिहास में रचनाओं के साथ उनके निर्माण की परिस्थितियों, साहित्यिक प्रवृत्तियों और समाज के साथ उनके संबंध को भी समझना आवश्यक है।

साहित्योतिहास का स्वरूप

साहित्योतिहास का स्वरूप बहुआयामी है। इसमें सामान्यतः निम्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है–

साहित्य की विकास-यात्रा

प्रमुख साहित्यकार

महत्वपूर्ण रचनाएँ

साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

भाषा एवं शैली में परिवर्तन

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

धार्मिक एवं दार्शनिक प्रभाव

राजनीतिक और आर्थिक परिवेश

पाठक और समाज का संबंध

साहित्य पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभाव

इस दृष्टि से साहित्येतिहास साहित्य और जीवन के बीच संबंध को समझने का माध्यम है।

साहित्येतिहास और सामान्य इतिहास

सामान्य इतिहास मुख्यतः राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक घटनाओं के विकास को सामने लाता है। साहित्येतिहास का केंद्र साहित्यिक रचनाएँ और साहित्यिक प्रवृत्तियाँ होती हैं। फिर भी दोनों एक-दूसरे से पूरी तरह अलग नहीं हैं।

उदाहरण के लिए किसी युग में राजनीतिक अस्थिरता रही हो तो उसका प्रभाव साहित्य की विषय-वस्तु पर पड़ सकता है। इसी प्रकार धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव काव्य की विचारधारा में दिखाई दे सकता है। इसलिए साहित्येतिहास लिखते समय तत्कालीन जीवन-परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

साहित्योतिहास का व्यापक अर्थ

व्यापक अर्थ में साहित्योतिहास किसी भाषा के साहित्य की निरंतर बदलती हुई चेतना का अध्ययन है। इसमें यह देखा जाता है कि साहित्यकार अपने समय को किस प्रकार देखते हैं और अपने अनुभवों को किस प्रकार रचनात्मक रूप प्रदान करते हैं।

इसलिए साहित्य इतिहास में रचना, रचनाकार और युग–तीनों के संबंध को समझना आवश्यक है।

1.2.2 साहित्य इतिहास लेखन की आवश्यकता एवं महत्त्व

साहित्य का इतिहास लिखने की आवश्यकता अनेक कारणों से अनुभव होती है। किसी भाषा के साहित्य की पूरी परम्परा को समझने के लिए उसके विकास-क्रम का ज्ञान आवश्यक है।

1. साहित्य के विकास को समझने में सहायता

साहित्य इतिहास के माध्यम से विद्यार्थी यह समझ सकता है कि साहित्य किस प्रकार एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक विकसित हुआ। आरम्भिक रचनाओं से लेकर आधुनिक साहित्य तक अनेक परिवर्तन दिखाई देते हैं।

2. साहित्यिक प्रवृत्तियों की पहचान

प्रत्येक युग में कुछ विशेष साहित्यिक प्रवृत्तियाँ प्रभावशाली होती हैं। इतिहास-लेखन के माध्यम से इन प्रवृत्तियों का अध्ययन व्यवस्थित रूप से किया जा सकता है।

3. साहित्यकारों के योगदान का मूल्यांकन

साहित्य के इतिहास में प्रमुख रचनाकारों के योगदान का अध्ययन किया जाता है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि किसी साहित्यकार ने अपने समय के साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया।

4. युग और साहित्य का संबंध समझना

साहित्य अपने समय से पूरी तरह अलग नहीं होता। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन साहित्य में भी दिखाई देते हैं। साहित्येतिहास इस संबंध को स्पष्ट करने में सहायक होता है।

5. साहित्यिक परम्परा की जानकारी

किसी भी साहित्य की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए उसकी पूर्ववर्ती परम्पराओं को जानना आवश्यक है। साहित्येतिहास पुरानी परम्पराओं और आधुनिक साहित्य के बीच संबंध स्थापित करता है।

6. आलोचनात्मक दृष्टि का विकास

साहित्येतिहास का अध्ययन विद्यार्थी को केवल जानकारी नहीं देता, बल्कि विभिन्न साहित्यिक दृष्टियों की तुलना करने की क्षमता भी विकसित करता है।

7. भाषा के विकास का अध्ययन

साहित्य के साथ भाषा का भी विकास होता है। साहित्येतिहास के माध्यम से भाषा के विभिन्न रूपों और उनके परिवर्तन को समझने में सहायता मिलती है।

8. सांस्कृतिक चेतना का विकास

साहित्य किसी समाज की सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखता है। साहित्य का इतिहास उस सांस्कृतिक विरासत को समझने में सहायता करता है।

इस प्रकार साहित्येतिहास का अध्ययन साहित्य की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषिक विकास को समझने का भी माध्यम है।

1.2.3 हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन का उद्भव

हिन्दी साहित्य का इतिहास व्यवस्थित रूप में लिखने की परम्परा धीरे-धीरे विकसित हुई। आरम्भिक समय में साहित्यकारों और उनकी रचनाओं के संबंध में जो सामग्री उपलब्ध थी, उसमें कवियों के जीवन, उनकी रचनाओं तथा कभी-कभी उनके आश्रयदाताओं का उल्लेख मिलता है।

प्रारम्भिक साहित्यिक सामग्री में कवि-परिचय, रचना-सूची, प्रशस्ति और जीवन-संबंधी कथाएँ अधिक दिखाई देती हैं। उस समय आधुनिक अर्थ में साहित्येतिहास लिखने की स्पष्ट और व्यवस्थित पद्धति विकसित नहीं हुई थी।

बाद में जब हिन्दी साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता बढ़ी, तब विभिन्न विद्वानों ने उपलब्ध साहित्यिक सामग्री को एकत्र करने और व्यवस्थित करने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की आधारभूमि तैयार हुई।

प्रारम्भिक इतिहास-लेखन की प्रमुख विशेषताएँ

प्रारम्भिक इतिहास-लेखन में—कवियों के जीवन-परिचय पर विशेष ध्यान दिया गया।

रचनाओं की सूची तैयार की गई।

कवियों की प्रसिद्धि और साहित्यिक स्थिति बताने का प्रयास हुआ।

अनेक स्थानों पर मौखिक परम्पराओं और प्रचलित मान्यताओं का सहारा लिया गया।

साहित्य को व्यवस्थित काल-क्रम में रखने की प्रक्रिया अभी प्रारम्भिक अवस्था में थी।

समय के साथ इतिहास-लेखन अधिक वैज्ञानिक और आलोचनात्मक होता गया। साहित्यकार के जीवन और रचनाओं के साथ उसके युग की परिस्थितियों को भी महत्त्व दिया जाने लगा।

इतिहास-लेखन का क्रमिक विकास

हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन को मोटे तौर पर विकास की निम्न प्रक्रिया में समझा जा सकता है–

कवि-परिचय → रचनाओं का संकलन → साहित्यिक प्रवृत्तियों की पहचान → काल-विभाजन → सामाजिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ → आलोचनात्मक इतिहास-दृष्टि

यह क्रम पूर्णतः रेखीय नहीं है, फिर भी इससे हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के विकास की सामान्य दिशा को समझा जा सकता है।

1.2.4 हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की प्रारम्भिक परम्परा

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की प्रारम्भिक परम्परा में अनेक ऐसे ग्रन्थ और विद्वान सामने आते हैं जिन्होंने बाद के इतिहासकारों के लिए सामग्री उपलब्ध कराने का कार्य किया। इस चरण में साहित्यकारों की जीवन-संबंधी जानकारी, उनकी रचनाओं और साहित्यिक प्रसिद्धि को सुरक्षित रखने की विशेष चिंता दिखाई देती है।

इस प्रारम्भिक परम्परा का महत्त्व इस बात में है कि उसने हिन्दी साहित्य के बारे में उपलब्ध सामग्री को एक स्थान पर लाने की दिशा में प्रयास किया। हालांकि इस समय इतिहास-लेखन आधुनिक आलोचनात्मक पद्धति की कसौटियों पर पूरी तरह विकसित नहीं था।

प्रारम्भिक परम्परा की प्रमुख विशेषताएँ

कवि-केंद्रित दृष्टि

इस चरण में साहित्य का अध्ययन मुख्यतः कवियों के जीवन और उनकी रचनाओं के आधार पर किया जाता था।

जीवन-वृत्त का महत्त्व -

कवि कहाँ के रहने वाले थे, किसके आश्रय में थे और उनकी कौन-कौन सी रचनाएँ प्रसिद्ध थीं—ऐसी जानकारियों को महत्त्व दिया जाता था।

प्रचलित कथाओं का प्रभाव

कई बार कवियों के संबंध में ऐसी बातें भी मिलती हैं जिनकी ऐतिहासिक प्रमाणिकता निश्चित नहीं होती। इसलिए बाद के इतिहासकारों को सामग्री की जाँच की आवश्यकता पड़ी।

आलोचनात्मक पद्धति का सीमित विकास

साहित्यिक रचनाओं के सामाजिक संदर्भ, भाषा, शैली और व्यापक साहित्यिक प्रभाव का व्यवस्थित विश्लेषण अपेक्षाकृत कम था।

सामग्री-संग्रह का महत्त्व

इन प्रयासों ने अनेक साहित्यकारों और उनकी रचनाओं संबंधी सामग्री को सुरक्षित रखने में योगदान दिया।

इस प्रकार प्रारम्भिक इतिहास-लेखन की सीमाएँ होने के बावजूद उसका ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं किया जा सकता। आगे चलकर इसी सामग्री को अधिक व्यवस्थित और आलोचनात्मक दृष्टि से देखा गया।

1.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का कार्य उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ।

प्रारम्भ में विदेशी विद्वानों ने हिन्दी साहित्य की सामग्री का संग्रह और वर्गीकरण करने का प्रयास किया। बाद में भारतीय विद्वानों ने इसे अधिक व्यवस्थित रूप प्रदान किया।

1.3.1 (क) गार्साँ द तासी और हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक इतिहास-लेखन

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा को समझने में यूरोपीय विद्वानों के प्रयासों का भी महत्त्व है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय भाषाओं और साहित्य के अध्ययन में यूरोपीय विद्वानों की रुचि बढ़ी। इसी क्रम में गार्साँ द तासी ने हिन्दुस्तानी साहित्य के संबंध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

गार्साँ द तासी का साहित्यिक इतिहास हिन्दी साहित्य के आधुनिक इतिहास-लेखन की पूर्ण विकसित पद्धति का उदाहरण नहीं था, फिर भी इसका महत्त्व इस कारण है कि इससे हिन्दी-हिन्दुस्तानी साहित्य के कवियों और रचनाओं को व्यवस्थित ढंग से देखने की दिशा में प्रारम्भिक प्रयास हुआ।

उनकी दृष्टि में साहित्यकारों और उनकी रचनाओं का परिचय प्रमुख था। आधुनिक भारतीय साहित्येतिहास की दृष्टि से इसकी सीमाएँ थीं, परन्तु बाद के इतिहासकारों के लिए ऐसे प्रयास उपयोगी आधार बने।

इस प्रारम्भिक चरण की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि हिन्दी साहित्य को अलग-अलग रचनाकारों की व्यक्तिगत उपलब्धियों से आगे बढ़ाकर एक व्यापक साहित्यिक परम्परा के रूप में देखने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

ख शिवसिंह सेंगर और 'शिवसिंह सरोज'

हिन्दी साहित्य इतिहास-लेखन के विकास में शिवसिंह सेंगर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'शिवसिंह सरोज' में अनेक हिन्दी कवियों और उनके साहित्यिक परिचय से संबंधित सामग्री मिलती है।

इस प्रकार के ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन साहित्यकारों की जानकारी को एकत्रित और सुरक्षित करना था। उस समय आधुनिक इतिहास-लेखन की वैज्ञानिक पद्धति पूरी तरह विकसित नहीं हुई थी, इसलिए साहित्यकारों से संबंधित प्रचलित जानकारी और परम्परागत सामग्री भी इसमें दिखाई देती है।

'शिवसिंह सरोज' का महत्त्व मुख्यतः सामग्री-संग्रह की दृष्टि से है। बाद के इतिहासकारों ने जब हिन्दी साहित्य के विकास को व्यवस्थित रूप से समझने का प्रयास किया, तब पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री उनके लिए उपयोगी सिद्ध हुई।

इस चरण की सीमा यह थी कि साहित्यिक प्रवृत्तियों और सामाजिक परिस्थितियों का उतना विस्तृत विश्लेषण नहीं मिलता, जितना आधुनिक साहित्येतिहास से अपेक्षित है।

फिर भी शिवसिंह सेंगर का प्रयास हिन्दी साहित्य इतिहास-लेखन की विकसित होती परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी माना जाता है।

ग मिश्रबन्धु और 'मिश्रबन्धु विनोद'

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में मिश्रबन्धुओं का योगदान विशेष महत्त्व रखता है। उनकी कृति 'मिश्रबन्धु विनोद' में बड़ी संख्या में हिन्दी कवियों के संबंध में सामग्री एकत्रित की गई।

इस ग्रन्थ की विशेषता इसका व्यापक सामग्री-संग्रह है। इसमें अनेक कवियों के जीवन और रचनात्मक कार्य का परिचय दिया गया। इस दृष्टि से यह पूर्ववर्ती प्रयासों की अपेक्षा अधिक विस्तृत दिखाई देता है।

मिश्रबन्धुओं ने साहित्यकारों को एक व्यापक क्रम में रखने का प्रयास किया। इससे हिन्दी साहित्य के इतिहास को व्यवस्थित रूप देने की दिशा में महत्वपूर्ण आधार तैयार हुआ। हालाँकि उनके इतिहास-लेखन में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि की कुछ सीमाएँ दिखाई देती हैं। कवियों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण साहित्यिक मूल्यांकन की गहराई प्रत्येक रचनाकार के लिए समान नहीं रह सकी। फिर भी सामग्री-संग्रह और साहित्यकारों को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व बना हुआ है।

घ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी साहित्येतिहास लेखन

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन को व्यवस्थित और आलोचनात्मक रूप प्रदान करने में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

उनका 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। इसमें साहित्य को केवल कवियों के जीवन-परिचय के रूप में प्रस्तुत करने के स्थान पर साहित्यिक प्रवृत्तियों और युगीन परिस्थितियों को भी महत्त्व दिया गया। आचार्य शुक्ल की इतिहास-दृष्टि में साहित्य और समाज के संबंध पर विशेष बल दिखाई देता है। उन्होंने विभिन्न कालों की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों को पहचानकर उनके आधार पर साहित्य के विकास को समझाने का प्रयास किया।

आचार्य शुक्ल की इतिहास-दृष्टि की प्रमुख विशेषताएँ

1. काल-विभाजन की स्पष्टता
   उन्होंने हिन्दी साहित्य को प्रमुख कालखंडों में विभाजित करके उसके अध्ययन को व्यवस्थित रूप प्रदान किया।

2. साहित्यिक प्रवृत्तियों पर बल

केवल कवियों की जीवन-कथाओं के बजाय उनके साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को महत्त्व दिया गया।

3. लोकमंगल की दृष्टि

साहित्य के सामाजिक उपयोग और व्यापक मानवीय हित को साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से महत्त्व दिया गया।

4. रचनात्मक मूल्यांकन

किसी कवि को केवल प्रसिद्ध होने के कारण महत्त्व नहीं दिया गया, बल्कि उसकी साहित्यिक उपलब्धियों को भी देखा गया।

5. सामाजिक पृष्ठभूमि का समावेश

साहित्य को तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से जोड़कर देखने की कोशिश की गई।

आचार्य शुक्ल का इतिहास-लेखन हिन्दी साहित्य के अध्ययन में एक मजबूत आधार बना। बाद के इतिहासकारों ने उनके निष्कर्षों से सहमति और असहमति दोनों व्यक्त कीं, जिससे हिन्दी साहित्येतिहास की आलोचनात्मक परम्परा और आगे विकसित हुई।

ड आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का योगदान

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्येतिहास लेखन को एक व्यापक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि प्रदान की। उनकी प्रमुख कृतियों में 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' तथा 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास' का उल्लेख किया जाता है।

द्विवेदी जी ने साहित्य को केवल किसी एक धार्मिक या साहित्यिक प्रवृत्ति की सीमा में रखकर देखने के बजाय उसकी व्यापक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर विचार किया।

उनकी दृष्टि में साहित्यिक प्रवृत्तियों के पीछे कार्य करने वाली सामाजिक और सांस्कृतिक शक्तियों को समझना आवश्यक है। इसी कारण उनके इतिहास-लेखन में परम्परा, संस्कृति, लोकजीवन और साहित्यिक चेतना के संबंध पर पर्याप्त ध्यान मिलता है।

द्विवेदी जी की दृष्टि की प्रमुख विशेषताएँ

साहित्य को व्यापक सांस्कृतिक संदर्भ में देखना।

साहित्यिक परम्पराओं की निरंतरता को महत्त्व देना।

मध्यकालीन साहित्य को केवल धार्मिक दृष्टि से सीमित न करना।

साहित्य और लोकजीवन के संबंध को समझना।

विभिन्न साहित्यिक धाराओं के विकास के पीछे की प्रेरणाओं को पहचानना।

पूर्ववर्ती इतिहास-लेखन की सीमाओं पर विचार करना।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को अधिक व्यापक और सांस्कृतिक दृष्टि से देखने की दिशा को मजबूत किया।

1.3.2 आधुनिक हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

समय के साथ हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में अनेक नई दृष्टियाँ विकसित हुईं। इतिहास-लेखन अब केवल कवियों के जीवन और रचनाओं तक सीमित नहीं रहा।

1. सामाजिक दृष्टि

साहित्य को समाज की परिस्थितियों से जोड़कर देखा जाने लगा। जाति, वर्ग, स्त्री-जीवन, श्रम, सामाजिक संबंध और जनजीवन जैसे विषयों को इतिहास-लेखन में अधिक महत्त्व मिला।

2. सांस्कृतिक दृष्टि

साहित्य को संस्कृति के विकास से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति मजबूत हुई। लोक परम्पराओं, धार्मिक आंदोलनों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान पर भी ध्यान दिया जाने लगा।

3. भाषिक दृष्टि

भाषा के विकास और उसके विभिन्न रूपों का अध्ययन साहित्येतिहास का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बना।

4. आलोचनात्मक दृष्टि

साहित्यकारों और रचनाओं का मूल्यांकन केवल परम्परागत प्रशंसा के आधार पर न करके आलोचनात्मक कसौटियों पर किया जाने लगा।

5. लोकवादी दृष्टि

लोकजीवन और सामान्य जनता के अनुभवों को साहित्यिक इतिहास में महत्त्व मिलने लगा।

6. स्त्री-दृष्टि

आधुनिक इतिहास-लेखन में महिला रचनाकारों, स्त्री-अनुभव और साहित्य में स्त्री की उपस्थिति को भी अधिक गंभीरता से देखा जाने लगा।

7. वंचित एवं उपेक्षित वर्गों की दृष्टि

दलित, आदिवासी, श्रमिक और अन्य उपेक्षित समुदायों की साहित्यिक अभिव्यक्तियों को इतिहास की मुख्य धारा में समझने के प्रयास हुए।

इस प्रकार आधुनिक साहित्येतिहास बहु-दृष्टिकोण वाला क्षेत्र बन गया है।

1.3.3 हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन

हिन्दी साहित्य का इतिहास बहुत विस्तृत है । इसकी पूरी विकास यात्रा को एक साथ समझना कठिन होता है । इसलिए अध्ययन की सुविधा के लिए इसे विभिन्न कालखण्डों में विभाजित किया जाता है।

काल-विभाजन का अर्थ है—साहित्य के दीर्घ विकास-क्रम को कुछ ऐसे कालखंडों में व्यवस्थित करना जिनकी अपनी विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ हों।

काल-विभाजन का उद्देश्य साहित्य को कठोर सीमाओं में बाँटना नहीं है। साहित्यिक प्रवृत्तियाँ एक दिन में समाप्त होकर दूसरी प्रवृत्ति में परिवर्तित नहीं होतीं। अनेक बार एक काल की प्रवृत्तियाँ दूसरे काल में भी दिखाई देती हैं।

इसलिए काल-विभाजन को अध्ययन की सुविधा के लिए बनाई गई एक उपयोगी व्यवस्था के रूप में समझना चाहिए।

1.3.4 काल-विभाजन के प्रमुख आधार

हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन के लिए विभिन्न आधार अपनाए गए हैं। इनमें प्रमुख हैं—

1. समय या कालक्रम

किसी निश्चित समय-सीमा के आधार पर साहित्य को अलग-अलग कालों में रखा जाता है।

2. साहित्यिक प्रवृत्ति

किसी काल में प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति को आधार बनाकर उसका नामकरण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए भक्तिकाल और रीतिकाल में प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियाँ नामकरण का आधार बनीं।

3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

किसी युग की सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी काल-विभाजन को प्रभावित करती हैं।

4. राजनीतिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। इसलिए कुछ इतिहासकारों ने राजनीतिक परिवर्तनों को भी ध्यान में रखा है। साहित्यकार या साहित्यिक नेतृत्व कुछ कालों को प्रमुख साहित्यकारों के प्रभाव से भी पहचाना गया है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु और द्विवेदी जैसे नामों के आधार पर युग चर्चा इसका उदाहरण है ।

1.3.5 विभिन्न विद्वानों के मतानुसार काल-विभाजन

। हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन को लेकर सभी विद्वानों में एक मत नहीं रहा है। अलग-अलग इतिहासकारों ने अपने अध्ययन और इतिहास-दृष्टि के आधार पर अलग-अलग योजनाएँ प्रस्तुत कीं।

(क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल-विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को मुख्यतः चार कालों में व्यवस्थित किय

1 वीरगाथा काल

2. भक्तिकाल

3. रीतिकाल

4. आधुनिक काल

यह योजना हिन्दी साहित्य के अध्ययन में अत्यंत प्रभावशाली रही। इसमें कालखंडों का नामकरण प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों से जुड़ा हुआ है।

(ख) रामकुमार वर्मा का काल-विभाजन

रामकुमार वर्मा ने शुक्ल जी की योजना से कुछ अलग व्यवस्था प्रस्तुत की। उनके विभाजन में प्रारम्भिक समय के लिए संधिकाल और चारणकाल जैसे नाम मिलते हैं। इसके बाद भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल आते हैं।

(ग) हजारीप्रसाद द्विवेदी का काल-विभाजन

द्विवेदी जी ने साहित्य के विकास को समझने के लिए कालों की व्यापक सीमाएँ स्वीकार कीं। उनके विभाजन में सामान्यतः—

1 आदिकाल

2. पूर्व मध्यकाल

3 उत्तर मध्यकाल

4 आधुनिक काल का उल्लेख मिलता है ।

(घ) डॉ. नगेन्द्र की दृष्टि

डॉ. नगेन्द्र ने भी हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन की परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान किया। उनकी योजना में पूर्ववर्ती इतिहासकारों के ढाँचे के साथ कुछ परिवर्तन दिखाई देते हैं। उनके अध्ययन में साहित्यिक विकास और कालगत परिवर्तन को व्यवस्थित रूप में समझने का प्रयास मिलता है।

तुलनात्मक दृष्टि

इन विभिन्न योजनाओं से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य का काल-विभाजन कोई एकमात्र स्थिर व्यवस्था नहीं है। इतिहासकार की दृष्टि, उपलब्ध सामग्री और साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर विभाजन में परिवर्तन संभव है।

सीमाएँ

काल-विभाजन की कुछ सीमाएँ भी हैं।

पहली सीमा यह है कि साहित्यिक प्रवृत्तियाँ निश्चित तारीख के साथ शुरू या समाप्त नहीं होतीं। एक प्रवृत्ति धीरे-धीरे विकसित होती है और उसका प्रभाव आगे भी बना रह सकता है।

दूसरी सीमा यह है कि किसी एक प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर पूरे काल के साहित्य को समझना कभी-कभी पर्याप्त नहीं होता।

तीसरी सीमा यह है कि एक ही काल में कई साहित्यिक धाराएँ साथ-साथ चल सकती हैं।

इसलिए काल-विभाजन को साहित्य के अध्ययन का सहायक साधन मानना अधिक उचित है, अंतिम और पूर्ण सत्य नहीं।

1.3.6 साहित्य इतिहास लेखन और काल-विभाजन का संबंध

साहित्येतिहास और काल-विभाजन एक-दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं। साहित्येतिहास में साहित्य के विकास को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया जाता है और काल-विभाजन उस क्रम को व्यवस्थित करने में सहायता करता है।

यदि साहित्येतिहास में काल-विभाजन न हो, तो बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध सामग्री को समझना कठिन हो सकता है। दूसरी ओर यदि काल-विभाजन साहित्यिक वास्तविकताओं की उपेक्षा करे, तो इतिहास का स्वरूप कृत्रिम हो सकता है।

अतः अच्छा साहित्येतिहास वही है जिसमें काल-विभाजन साहित्य की वास्तविक प्रवृत्तियों, ऐतिहासिक परिस्थितियों और विकास-क्रम के अनुरूप हो

1.3.7 समकालीन इतिहास-दृष्टि एवं विकास - क्रम

आज हिन्दी साहित्य के इतिहास को केवल प्रसिद्ध कवियों और स्थापित साहित्यिक धाराओं के आधार पर देखना पर्याप्त नहीं माना जाता। आधुनिक अध्ययन में साहित्य की विविध आवाजों को समझने का प्रयास किया जाता है।

इसमें–, स्त्री साहित्य,, दलित साहित्य,, आदिवासी साहित्य,, लोक साहित्य,, क्षेत्रीय साहित्य, प्रवासी साहित्य,, जनवादी साहित्य जैसी धाराओं को भी महत्त्व दिया जाता है।

समकालीन इतिहास-दृष्टि साहित्य को समाज के अनेक वर्गों और अनुभवों की अभिव्यक्ति के रूप में देखने का प्रयास करती है। इससे साहित्येतिहास अधिक व्यापक और बहुआयामी बनता है।

आदिकाल : सामान्य परिचय

हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम में आदिकाल का विशेष स्थान है। यह वह समय है जब हिन्दी के आरम्भिक साहित्यिक रूप विकसित हो रहे थे और विभिन्न क्षेत्रीय भाषिक रूपों में साहित्यिक अभिव्यक्ति दिखाई देने लगी थी। इस काल को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा काल' नाम दिया था, जबकि वर्तमान हिन्दी साहित्य-अध्ययन में 'आदिकाल' नाम अधिक व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है। विभिन्न इतिहासकारों ने इसकी समय-सीमा और नामकरण को अलग-अलग ढंग से देखा है।

आदिकालीन साहित्य में वीरता, युद्ध, आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा, धार्मिक चेतना तथा लोक-परम्पराओं से संबंधित सामग्री मिलती है। इस काल का साहित्य एकरूप नहीं है। इसलिए इसे केवल वीर-काव्य तक सीमित करके देखना उचित नहीं होगा।

आदिकाल की सामान्य विशेषताएँ

1. वीरता की भावना – युद्ध, पराक्रम और शौर्य से संबंधित रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

2. आश्रयदाता की प्रशंसा – अनेक रचनाकार राजाओं या सामंतों के आश्रय में रहे।

3. धार्मिक एवं आध्यात्मिक चेतना – धार्मिक विचारों और साधना से संबंधित रचनाएँ भी मिलती हैं।

4. लोकजीवन का प्रभाव – लोक-परम्पराएँ और लोकविश्वास साहित्य में दिखाई देते हैं।

5. भाषिक संक्रमण – विभिन्न अपभ्रंश, प्राकृत और आरम्भिक हिन्दी रूपों के बीच विकास की प्रक्रिया दिखाई देती है।

6. विविध साहित्यिक धाराएँ – इस काल में केवल एक ही प्रकार का साहित्य नहीं मिलता।

इसलिए आदिकाल को हिन्दी साहित्य की विकासशील प्रारम्भिक अवस्था के रूप में देखना अधिक उपयोगी है।

भक्तिकाल : सामान्य परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल अत्यंत महत्वपूर्ण कालखंड है। इसकी प्रमुख पहचान भक्ति-भावना और व्यापक धार्मिक-सामाजिक चेतना से जुड़ी हुई है।

भक्तिकालीन साहित्य में ईश्वर के प्रति प्रेम, समर्पण, मानवतावादी दृष्टि, सामाजिक रूढ़ियों का विरोध और लोकभाषाओं में अभिव्यक्ति जैसे अनेक पक्ष दिखाई देते हैं।

भक्तिकाव्य को सामान्यतः दो बड़ी धाराओं में समझा जाता है–

1. निर्गुण भक्ति धारा

इसमें ईश्वर को निराकार और निर्गुण रूप में स्वीकार करने वाली काव्य-परम्परा आती है। संत काव्य और सूफी प्रेमाख्यान परम्परा को इसके प्रमुख रूपों के रूप में पढ़ाया जाता है।

2. सगुण भक्ति धारा

इसमें ईश्वर के साकार रूप की उपासना प्रमुख है। इसके अंतर्गत सामान्यतः–

रामभक्ति, कृष्णभक्ति की धाराओं का अध्ययन किया जाता है।

भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएँ

ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण, लोकभाषाओं का व्यापक प्रयोग, धार्मिक अनुभव की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति, सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न, मानव-मूल्यों पर बल, गुरु की महत्ता

लोकजीवन से निकट संबंध, सरल और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति भक्तिकाल का साहित्य हिन्दी की विभिन्न बोलियों और लोकभाषिक रूपों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करने में भी महत्त्वपूर्ण रहा।

रीतिकाल : सामान्य परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल को सामान्यतः संवत् 1700 से 1900 के आसपास का काल माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे उत्तर मध्यकाल के अंतर्गत रखा और इसकी प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर रीतिकाल नाम दिया।

रीतिकालीन साहित्य में काव्यशास्त्रीय नियमों, अलंकारों, नायिका-भेद, श्रृंगार तथा काव्य-कला पर विशेष ध्यान दिखाई देता है।

रीतिकाल की प्रमुख धाराएँ

रीतिकालीन काव्य को अध्ययन की सुविधा के लिए सामान्यतः तीन प्रवृत्तियों में समझा जाता है–

1. रीतिबद्ध काव्य

2. रीतिसिद्ध काव्य

3. रीतिमुक्त काव्य

इनके माध्यम से यह समझने में सहायता मिलती है कि रीतिकाल में सभी कवि समान प्रकार की काव्य-दृष्टि नहीं रखते थे।

रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएँ

काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की प्रधानता

अलंकारों का व्यापक प्रयोग

श्रृंगारिक विषयों की प्रमुखता

नायिका-भेद का विस्तृत वर्णन

ब्रजभाषा का व्यापक साहित्यिक प्रयोग

काव्य-कला और शैली पर विशेष ध्यान

दरबारी वातावरण का प्रभाव

रीतिकाल को केवल श्रृंगार का काल कहना पर्याप्त नहीं है। इस काल में नीति, वीरता, भक्ति और अन्य विषयों से संबंधित रचनाएँ भी मिलती हैं।

आधुनिक काल : सामान्य परिचय

आधुनिक काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में व्यापक परिवर्तन का काल है। इस समय हिन्दी गद्य का तेजी से विकास हुआ और साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय तथा आधुनिक जीवन से संबंधित विषयों का विस्तार हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल को गद्यकाल भी कहा था। बाद के इतिहास-लेखन में 'आधुनिक काल' नाम अधिक प्रचलित हुआ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में साहित्यिक विधाओं का अत्यधिक विस्तार हुआ। कविता के साथ-साथ कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, पत्रकारिता, संस्मरण, आत्मकथा और अन्य विधाओं का विकास हुआ।

आधुनिक काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

आधुनिक साहित्य को अध्ययन की सुविधा के लिए अनेक युगों और प्रवृत्तियों में देखा जाता है, जैसे–

भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद ,नई कविता, समकालीन साहित्य

इन विभाजनों की समय-सीमाएँ सभी विद्वानों के यहाँ समान नहीं हैं। इसलिए इन्हें कठोर सीमाओं के रूप में न लेकर प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों के संकेतक के रूप में समझना उचित है।

- काल-विभाजन की समस्या

काल-विभाजन करते समय सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि साहित्यिक प्रवृत्तियाँ किसी निश्चित तिथि पर समाप्त या प्रारम्भ नहीं होतीं। एक प्रवृत्ति धीरे-धीरे विकसित होती है और लंबे समय तक अपना प्रभाव बनाए रख सकती है।

उदाहरण के लिए भक्तिकाल के समय अन्य प्रकार का साहित्य भी लिखा गया और रीतिकाल में भी भक्ति या वीरता संबंधी रचनाएँ मिलती हैं। इसी प्रकार आधुनिक काल के प्रारम्भ में भी पूर्ववर्ती साहित्यिक संस्कार दिखाई दे सकते हैं।

इसलिए किसी काल के नाम को उस काल में उपस्थित प्रधान प्रवृत्ति का संकेत मानना चाहिए, न कि उस काल में केवल उसी प्रकार का साहित्य लिखा गया था।

यह बात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की काल-विभाजन योजना को समझते समय भी महत्त्वपूर्ण है।

1.3.8 हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन की उपयोगिता तथा उपलब्धियां

काल-विभाजन से हिन्दी साहित्य के अध्ययन में कई सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

1. अध्ययन को व्यवस्थित बनाना

सैकड़ों वर्षों के साहित्य को छोटे और पहचान योग्य खंडों में पढ़ना सरल होता है।

2. प्रवृत्तियों की पहचान

किस काल में कौन-सी प्रवृत्ति अधिक प्रभावशाली रही, इसे समझना आसान होता है।

3. विकास-क्रम की समझ

साहित्य में होने वाले परिवर्तन को क्रमबद्ध ढंग से समझा जा सकता है।

4 साहित्य और इतिहास का संबंध
काल-विभाजन के माध्यम से साहित्य को उसके समय की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में समझने में सहायता मिलती है।
हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की सीमाएँ

1. चयन की समस्या

इतिहासकार को विशाल साहित्य में से कुछ रचनाकारों और रचनाओं को विशेष महत्त्व देना पड़ता है। इससे कुछ साहित्यिक धाराएँ अपेक्षाकृत कम दिखाई दे सकती हैं।

2. काल-सीमा की समस्या - किसी साहित्यिक प्रवृत्ति के आरम्भ और समाप्ति की निश्चित तारीख तय करना कठिन होता है।

3. मूल्यांकन में भिन्नता - अलग-अलग इतिहासकार एक ही साहित्यकार को अलग-अलग दृष्टियों से देख सकते हैं।

4. उपेक्षित साहित्य की समस्या - पुराने इतिहास-लेखन में कई बार लोकसाहित्य, महिला साहित्य और अन्य हाशिये की साहित्यिक परम्पराओं को अपेक्षित स्थान नहीं मिला।

5. वर्तमान दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन - समय बदलने के साथ साहित्य को देखने की दृष्टि भी बदलती है। इसलिए पुराने इतिहास-लेखन का पुनर्पाठ आवश्यक रहता है।

- हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की उपलब्धियाँ

पहली उपलब्धि यह है कि हिन्दी के अनेक साहित्यकारों और उनकी रचनाओं की जानकारी सुरक्षित हुई।

दूसरी उपलब्धि यह है कि साहित्य के विकास को एक क्रम में देखने की दृष्टि विकसित हुई।

तीसरी उपलब्धि यह है कि साहित्यिक प्रवृत्तियों की पहचान संभव हुई।

चौथी उपलब्धि यह है कि साहित्य और समाज के संबंध पर गंभीर विचार विकसित हुआ।

पाँचवीं उपलब्धि यह है कि काल-विभाजन के माध्यम से विशाल साहित्यिक सामग्री का अध्ययन अधिक व्यवस्थित हुआ।

छठी उपलब्धि यह है कि आधुनिक इतिहास-दृष्टि ने साहित्य के अनेक उपेक्षित पक्षों को भी अध्ययन का विषय बनाया।

1.4 अपनी प्रगति जाँचें

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. हिन्दी साहित्य इतिहास-लेखन की प्रारम्भिक परम्परा की दो विशेषताएँ लिखिए।

2. 'शिवसिंह सरोज' का साहित्येतिहास की दृष्टि से क्या महत्त्व है?

3. 'मिश्रबन्धु विनोद' का योगदान स्पष्ट कीजिए।

4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इतिहास-दृष्टि की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

5. हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन क्यों किया जाता है?

6. काल-विभाजन के चार प्रमुख आधार लिखिए।

7. हिन्दी साहित्य के चार प्रमुख काल कौन-कौन से हैं?

8 रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक विशेषताएँ क्या हैं?

9 . काल-विभाजन की कोई दो सीमाएँ लिखिए।

1.5 सारांश

इस पाठ में हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा तथा हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन का अध्ययन किया गया। साहित्येतिहास केवल साहित्यकारों और उनकी रचनाओं की सूची नहीं है। यह साहित्य की विकास-यात्रा को उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषिक और ऐतिहासिक संदर्भों के साथ समझने का प्रयास है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा धीरे-धीरे विकसित हुई। प्रारम्भिक प्रयासों में कवियों के जीवन और रचनाओं से संबंधित सामग्री को एकत्र करने पर अधिक बल था।

गार्सां द तासी, शिवसिंह सेंगर और मिश्रबन्धुओं के प्रयासों ने इस दिशा में आधार तैयार किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को अधिक व्यवस्थित और आलोचनात्मक रूप प्रदान किया। उनके काल-विभाजन में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल प्रमुख हैं। इस योजना को बाद के अनेक इतिहासकारों ने कुछ संशोधनों के साथ अपनाया।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को व्यापक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों में देखने पर बल दिया। बाद के इतिहासकारों ने सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषिक, स्त्रीवादी, दलित और अन्य दृष्टियों को भी साहित्येतिहास के अध्ययन में स्थान दिया।

1.6 मुख्य शब्द एवं अर्थ

साहित्येतिहास – साहित्य के विकास-क्रम का ऐतिहासिक अध्ययन।

इतिहास-दृष्टि – इतिहास को देखने और समझने की विशिष्ट विचार-पद्धति।

साहित्यिक प्रवृत्ति – किसी समय विशेष में साहित्य में प्रमुख रूप से दिखाई देने वाली रचनात्मक विशेषता।

आदिकाल – हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक विकास से संबंधित काल।

रीतिकाल – काव्यशास्त्रीय नियमों, श्रृंगार और काव्य-कला की प्रधानता वाला काल।

आधुनिक काल – आधुनिक सामाजिक चेतना और हिन्दी गद्य के व्यापक विकास से संबंधित काल।

रीतिबद्ध काव्य – काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार रचना करने वाली काव्य-धारा।

रीतिमुक्त काव्य – काव्य-रीतियों की औपचारिक सीमाओं से अपेक्षाकृत मुक्त काव्य।

1.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य इतिहास-लेखन की परम्परा का क्रमिक विकास स्पष्ट कीजिए।

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्येतिहास-दृष्टि का विवेचन कीजिए।

3. हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन की आवश्यकता एवं उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।

4. विभिन्न विद्वानों के काल-विभाजन का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

5. काल-विभाजन की उपयोगिता और सीमाओं पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. साहित्येतिहास से क्या अभिप्राय है?

2. शिवसिंह सेंगर का साहित्येतिहास में क्या योगदान है?

3. 'मिश्रबन्धु विनोद' का महत्त्व बताइए।

4. भक्तिकाल की प्रमुख धाराएँ कौन-सी हैं?

5. रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

6. आधुनिक काल की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियाँ कौन-सी हैं?

1.8 अपनी प्रगति जाँचें के उत्तर

1. साहित्येतिहास क्या है?

साहित्य के उद्भव, विकास, परिवर्तन और प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों का ऐतिहासिक संदर्भ में किया गया अध्ययन साहित्येतिहास कहलाता है।

2. शिवसिंह सरोज का महत्त्व क्या है?

इसमें अनेक हिन्दी कवियों और उनके साहित्य से संबंधित सामग्री का संकलन मिलता है। इसलिए हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास-लेखन में इसका महत्त्व है।

3. मिश्रबन्धु विनोद का योगदान क्या है?

इसमें बड़ी संख्या में हिन्दी कवियों के संबंध में सामग्री एकत्र की गई। इससे हिन्दी साहित्य के इतिहास को व्यवस्थित करने के प्रयास को विस्तार मिला।

4. शुक्ल जी की इतिहास-दृष्टि की विशेषता क्या थी?

उन्होंने साहित्यिक प्रवृत्तियों, युगीन परिस्थितियों और साहित्य के विकास-क्रम को ध्यान में रखकर इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

5. काल-विभाजन क्यों आवश्यक है?

विशाल साहित्यिक सामग्री को व्यवस्थित रूप से समझने तथा विभिन्न कालों की प्रवृत्तियों की तुलना करने के लिए काल-विभाजन उपयोगी है।

6. काल-विभाजन के आधार क्या हैं?

समय-क्रम, साहित्यिक प्रवृत्ति, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, राजनीतिक परिस्थितियाँ, प्रभावशाली व्यक्तित्व और विचारधारा आदि इसके प्रमुख आधार हैं।

7. हिन्दी साहित्य के चार प्रमुख काल कौन-से हैं?

आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल।

8 . रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

काव्यशास्त्रीयता, अलंकार-प्रधानता, श्रृंगार, नायिका-भेद तथा काव्य-कला पर विशेष बल।

9 काल-विभाजन की दो सीमाएँ क्या हैं?

साहित्यिक प्रवृत्तियों की निश्चित समय-सीमा निर्धारित करना कठिन है और एक ही समय में अनेक प्रवृत्तियाँ साथ-साथ चल सकती हैं।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास।

2. हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास।

3. हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य की भूमिका।

4. रामकुमार वर्मा – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

5. नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास।

6. बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास।

7. गणपतिचन्द्र गुप्त – हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास।

8. रामविलास शर्मा – हिन्दी साहित्य की भूमिका।

9. विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्नातक स्तर की हिन्दी साहित्य संबंधी अध्ययन-सामग्री।

10. हिन्दी साहित्य इतिहास एवं काल-विभाजन से संबंधित विश्वविद्यालयीय पाठ्य-सामग्री।

कोर्ड कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या : 2	Vetter : Dr. कमलेश देवी
इकाई - 1 आदिकाल का नामकरण एवं परिस्थितियों	

2 : आदिकाल का नामकरण और आदिकाल की परिस्थितियाँ

2.0 अधिगम उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पाठ का मुख्य भाग

2.2.1 आदिकाल : अर्थ और स्वरूप

2.2.2 आदिकाल की समय-सीमा

2.2.3 आदिकाल के नामकरण की समस्या

2.2.4 आदिकाल के नामकरण के विभिन्न मत

2.2.5 'आदिकाल' नाम की सार्थकता

2.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

2.3.1 आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ

2.3.2 आदिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ

2.3.3 आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियाँ

2.3.4 आदिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

2.3.5 आदिकाल की आर्थिक परिस्थितियाँ

2.3.6 आदिकाल की भाषिक परिस्थितियाँ

2.3.7 आदिकालीन साहित्य पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव

2.3.8 आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विकास

2.3.9 आदिकाल के साहित्य में लोकजीवन और वीरता

2.3.10 आदिकाल की परिस्थितियों और साहित्य के अंतर्संबंध

2.4 अपनी प्रगति जाँचें

2.5 सारांश

2.6 मुख्य शब्द

2.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

2.8 अपनी प्रगति जाँचें के उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी–

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल की सामान्य अवधारणा को समझ सकेंगे।

2. आदिकाल की समय-सीमा के संबंध में प्रचलित मतों से परिचित हो सकेंगे।

3. हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल के नामकरण की समस्या को समझ सकेंगे।

4. आदिकाल के संबंध में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रयुक्त नामों और उनके आधार को जान सकेंगे।

5. 'आदिकाल' नाम की सार्थकता को समझ सकेंगे।

6. आदिकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन कर सकेंगे।

7. तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक जीवन की प्रमुख विशेषताओं को पहचान सकेंगे।

8. आदिकालीन सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

9. तत्कालीन भाषिक स्थिति तथा शिक्षा एवं ज्ञान की व्यवस्था से परिचित हो सकेंगे।

10. आदिकालीन लोकजीवन की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।

11. तत्कालीन परिस्थितियों और साहित्य के बीच के संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे।

12. आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के विकास को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का इतिहास अनेक कालखंडों और साहित्यिक प्रवृत्तियों से मिलकर बना है। प्रत्येक काल की अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रही है। साहित्य किसी समाज से अलग होकर विकसित नहीं होता। जिस समय में साहित्यकार जीवन व्यतीत करता है, उस समय की परिस्थितियाँ उसके विचारों, अनुभवों, संवेदनाओं और रचनात्मक अभिव्यक्ति को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती हैं। इसलिए साहित्य के किसी कालखंड को समझने के लिए उसकी तत्कालीन परिस्थितियों को समझना आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल का विशेष महत्त्व है। यह वह प्रारंभिक कालखंड है जिसमें हिन्दी के आरंभिक साहित्यिक रूपों का विकास दिखाई देता है। इस समय भाषा अपने आरंभिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजर रही थी और साहित्य में भी विविध प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। धार्मिक साधना, वीरता, लोकजीवन, नीति, प्रेम, आध्यात्मिक चिंतन तथा विविध सामाजिक अनुभवों ने इस समय की साहित्यिक अभिव्यक्ति को प्रभावित किया।

आदिकाल को समझने में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न इसके नामकरण का है। साहित्येतिहासकारों ने इस काल के साहित्य की प्रकृति को अलग-अलग दृष्टियों से देखा है। किसी विद्वान ने वीरता और युद्ध संबंधी साहित्य को अधिक महत्त्व दिया, तो किसी ने धार्मिक एवं साधनात्मक साहित्य की ओर ध्यान आकर्षित किया। इसी कारण इस काल के लिए अलग-अलग नामों का प्रयोग हुआ। बाद में 'आदिकाल' नाम अधिक व्यापक रूप से प्रचलित हुआ। आदिकाल की परिस्थितियों का अध्ययन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस समय राजनीतिक स्तर पर अनेक परिवर्तन हो रहे थे। विभिन्न राजवंशों और स्थानीय शक्तियों के बीच संघर्ष, राज्य-विस्तार की आकांक्षा और युद्धों का वातावरण समाज को प्रभावित कर रहा था। दूसरी ओर समाज में अनेक वर्ग, जातियाँ और समुदाय अपने-अपने रीति-रिवाजों और मान्यताओं के साथ जीवन व्यतीत कर रहे थे।

धार्मिक क्षेत्र में भी अनेक धाराएँ सक्रिय थीं। विभिन्न धार्मिक और साधनात्मक परंपराओं ने जनजीवन तथा साहित्य को प्रभावित किया। सांस्कृतिक जीवन में लोकपरंपराओं, उत्सवों, धार्मिक मान्यताओं, वीरगाथाओं और सामुदायिक परंपराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। भाषा की दृष्टि से भी यह काल परिवर्तन और विकास का समय था। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से विकसित होते हुए विभिन्न जनभाषिक रूप साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम बनने लगे थे। अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग भाषिक रूप प्रचलित थे। इस भाषिक विविधता ने आगे चलकर हिन्दी की विभिन्न बोलियों और साहित्यिक रूपों के विकास में योगदान दिया।

इस अध्याय में हम पहले आदिकाल की सामान्य अवधारणा और उसके नामकरण की समस्या को समझेंगे। इसके बाद आदिकालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक,

आर्थिक और भाषिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी देखेंगे कि इन परिस्थितियों का तत्कालीन साहित्य पर किस प्रकार प्रभाव पड़ा।

2.2 पाठ का मुख्य भाग

2.2.1 आदिकाल : अर्थ और स्वरूप

'आदिकाल' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है–आदि + काल। 'आदि' का अर्थ है–आरंभ या प्रारंभिक अवस्था और 'काल' का अर्थ है–समय या युग। इस प्रकार सामान्य अर्थ में आदिकाल का आशय हिन्दी साहित्य के आरंभिक कालखंड से लिया जाता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल का निर्धारण केवल भाषा के जन्म के आधार पर नहीं किया जा सकता। हिन्दी का विकास एक लंबी भाषिक प्रक्रिया का परिणाम है। संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और विभिन्न लोकभाषिक रूपों के विकास के क्रम में आगे चलकर हिन्दी के विविध रूप विकसित हुए। इसलिए हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल को समझते समय भाषिक विकास की इस निरंतर प्रक्रिया को ध्यान में रखना आवश्यक है।

आदिकाल के साहित्य में एकरूपता नहीं दिखाई देती। इसमें अनेक प्रकार की रचनाएँ और साहित्यिक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। वीरता तथा युद्ध-वर्णन से संबंधित रचनाएँ, धार्मिक एवं साधनात्मक साहित्य, लोकपरंपराओं से जुड़े काव्य और विविध प्रकार की कथात्मक अभिव्यक्तियाँ इस काल की साहित्यिक विविधता को दर्शाती हैं।

आदिकाल की प्रमुख विशेषताएँ

आदिकाल के स्वरूप को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है–

1. आरंभिक साहित्यिक विकास

यह हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक विकास का महत्त्वपूर्ण चरण है। इस समय साहित्यिक भाषा अपने स्वरूप को विकसित कर रही थी।

2. विविध साहित्यिक धाराएँ

इस काल में साहित्य एक ही प्रवृत्ति तक सीमित नहीं था। विभिन्न धार्मिक, वीरतापरक और लोकाभिमुख रचनात्मक धाराएँ दिखाई देती हैं।

3. लोकजीवन से संबंध

तत्कालीन समाज और लोकजीवन के अनेक पक्ष साहित्य में व्यक्त हुए। लोकविश्वास, रीति-रिवाज और जीवन-मूल्य रचनाओं में विभिन्न रूपों में दिखाई देते हैं।

4. वीरता की अभिव्यक्ति

युद्ध, पराक्रम, राज्य और शौर्य से संबंधित विषयों का साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा।

5. धार्मिक एवं साधनात्मक प्रभाव

विभिन्न धार्मिक और आध्यात्मिक परंपराओं ने साहित्य को प्रभावित किया। साधना, आध्यात्मिक अनुभव और नैतिक विचार अनेक रचनाओं में व्यक्त हुए।

2.2.2 आदिकाल की समय-सीमा

साहित्य के इतिहास में किसी काल की समय-सीमा निर्धारित करना सरल कार्य नहीं है। साहित्यिक परिवर्तन अचानक नहीं होते। एक साहित्यिक प्रवृत्ति समाप्त होते ही दूसरी प्रवृत्ति उसी क्षण आरंभ नहीं हो जाती। दोनों के बीच एक संक्रमणकाल हो सकता है।

इसी कारण आदिकाल की समय-सीमा के संबंध में साहित्येतिहासकारों के बीच पूर्ण समानता नहीं मिलती। विभिन्न इतिहासकारों ने अपनी-अपनी अध्ययन-पद्धति और साहित्यिक आधार के अनुसार काल-विभाजन किया है।

आदिकाल की समय-सीमा निर्धारित करते समय मुख्यतः तीन आधार महत्त्वपूर्ण रहे हैं–

1. भाषा का विकास
2. उपलब्ध साहित्यिक रचनाएँ
3. साहित्यिक प्रवृत्तियों में परिवर्तन

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सामान्यतः आदिकाल के लिए लगभग दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के बीच का समय माना जाता है, यद्यपि अलग-अलग विद्वानों द्वारा आरंभ और अंत की सीमाओं में अंतर मिलता है।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि काल-विभाजन सुविधा के लिए बनाया गया ऐतिहासिक ढाँचा है। साहित्य का वास्तविक विकास निरंतर प्रक्रिया में होता है।

2.2.3 आदिकाल के नामकरण की समस्या

आदिकाल के नामकरण को लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में लंबे समय से चर्चा होती रही है। किसी काल का नाम केवल उसकी समय-सीमा बताने के लिए नहीं रखा जाता, बल्कि उस काल की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति को भी सामने लाने का प्रयास किया जाता है।

आदिकाल के संबंध में समस्या इसलिए अधिक दिखाई देती है क्योंकि इस काल में साहित्य की अनेक धाराएँ सक्रिय थीं। यदि केवल वीरतापरक साहित्य को आधार बनाया जाए तो काल

का एक रूप सामने आता है; यदि धार्मिक और साधनात्मक साहित्य को आधार बनाया जाए तो दूसरा रूप दिखाई देता है।

इस कारण विभिन्न साहित्येतिहासकारों ने इस काल के लिए अलग-अलग नाम प्रस्तावित किए या अलग-अलग नामों को महत्त्व दिया।

नामकरण की समस्या के प्रमुख कारण

क) साहित्यिक विविधता

इस काल में एक से अधिक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ थीं।

ख) रचनाओं की प्रामाणिकता का प्रश्न

प्राचीन साहित्य की अनेक रचनाओं के रचनाकाल, रचनाकार और पाठ-परंपरा को लेकर विद्वानों में मतभेद पाए जाते हैं।

ग) . स्रोतों की सीमित उपलब्धता

प्राचीन काल की अनेक रचनाएँ सुरक्षित नहीं रह सकीं। जो सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर ही इतिहास का निर्माण करना पड़ता है।

घ) काल-विभाजन की अलग-अलग पद्धतियाँ

साहित्येतिहासकारों ने काल-विभाजन के लिए अलग-अलग आधार अपनाए। किसी ने साहित्यिक प्रवृत्ति को प्रधानता दी, किसी ने ऐतिहासिक परिस्थितियों को और किसी ने भाषा को।

ड) . साहित्य के अनेक रूप

आदिकालीन साहित्य में वीर, धार्मिक, साधनात्मक और लोकाभिमुख प्रवृत्तियाँ एक साथ दिखाई देती हैं।

इसलिए इस काल का कोई एक नाम उसकी संपूर्ण साहित्यिक विविधता को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकता।

2.2.4 आदिकाल के नामकरण के विभिन्न मत

आदिकाल के नामकरण के संबंध में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाए हैं। यहाँ प्रमुख नामों को उनके आधार के साथ समझना उपयोगी होगा।

1. वीरगाथा काल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में आरंभिक काल के लिए 'वीरगाथा काल' नाम का प्रयोग किया। इस नाम के पीछे उस समय उपलब्ध ऐसी रचनाओं का महत्त्व था जिनमें वीरता, युद्ध, पराक्रम, राजाओं और योद्धाओं का वर्णन प्रमुख रूप से मिलता है। इस दृष्टिकोण से आदिकालीन साहित्य में तत्कालीन सामंती एवं युद्धप्रधान वातावरण की अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

हालाँकि इस नाम की सीमा यह मानी जाती है कि आदिकालीन साहित्य केवल वीरतापरक साहित्य तक सीमित नहीं था। धार्मिक, साधनात्मक तथा अन्य प्रकार की रचनाएँ भी इस काल में मिलती हैं।

2. चारण काल

कुछ विद्वानों ने इस काल को 'चारण काल' कहने का प्रयास किया। चारण और भाट परंपरा में राजाओं और योद्धाओं की प्रशंसा, उनके पराक्रम का वर्णन तथा वंश-परंपरा का उल्लेख किया जाता था। इस नाम से तत्कालीन दरबारी एवं वीरतापरक साहित्य की ओर संकेत मिलता है। किंतु यह नाम भी पूरे काल के साहित्य को समेटने में सीमित माना जा सकता है।

3. सिद्ध-सामंत-युग

राहुल सांकृत्यायन ने इस काल की विभिन्न साहित्यिक धाराओं और सामाजिक संरचना को ध्यान में रखते हुए 'सिद्ध-सामंत-युग' जैसी संज्ञा का प्रयोग किया। इस दृष्टि में एक ओर सिद्धों की साधनात्मक परंपरा और दूसरी ओर सामंती सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था को महत्त्व दिया गया। यह नाम इस बात की ओर संकेत करता है कि आदिकालीन साहित्य को केवल वीरता के आधार पर समझना पर्याप्त नहीं है।

4. आदिकाल

बाद के साहित्येतिहास में 'आदिकाल' नाम अधिक व्यापक रूप से स्वीकार किया गया। इस नाम का लाभ यह है कि यह किसी एक साहित्यिक प्रवृत्ति को पूरे काल की पहचान नहीं बनाता। यह हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक विकास की ओर संकेत करता है।

'आदिकाल' नाम के माध्यम से इस काल की विविध साहित्यिक धाराओं को एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में समझने की सुविधा मिलती है।

2.2.5 आदिकाल' नाम की सार्थकता

'आदिकाल' शब्द का सामान्य अर्थ है– हिंदी साहित्य का प्रारम्भिक काल।

यह नाम इसलिए दिया गया क्योंकि यही हिंदी साहित्य के विकास का प्रारम्भिक चरण माना जाता है।

'आदिकाल' नाम की प्रमुख विशेषताएँ

1. व्यापकता

यह नाम किसी एक साहित्यिक प्रवृत्ति तक सीमित नहीं है। इसमें वीरगाथा, सिद्ध, नाथ, जैन तथा लोक साहित्य–सभी सम्मिलित हो जाते हैं।

2. निष्पक्षता

इस नाम में किसी विशेष सम्प्रदाय, विचारधारा अथवा साहित्यिक प्रवृत्ति का आग्रह नहीं है।

3. ऐतिहासिक उपयुक्तता

हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रारम्भिक विकास को यह नाम उचित रूप से व्यक्त करता है।

4. आधुनिक स्वीकृति

आज अधिकांश विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों में 'आदिकाल' नाम का व्यापक प्रयोग किया जाता है।

'आदिकाल' नाम की सीमाएँ

कुछ विद्वानों का मत है कि–

इस नाम से उस काल की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति का बोध नहीं होता।

केवल प्रारम्भिक होना किसी काल की साहित्यिक विशेषता नहीं है।

फिर भी इसकी व्यापकता के कारण आधुनिक विद्वान इसे अधिक उपयुक्त मानते हैं।

2.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

2.3.1 आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ

किसी भी साहित्यिक युग की रचनात्मक प्रवृत्तियों को समझने के लिए उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है। आदिकाल का समय भारतीय इतिहास में राजनीतिक परिवर्तन और अनेक प्रकार के संघर्षों का समय था। उत्तर भारत में विभिन्न राजवंशों और स्थानीय शासकों का प्रभाव था। अनेक छोटे-बड़े राज्यों के बीच सत्ता, क्षेत्र और प्रतिष्ठा को लेकर संघर्ष होते रहते थे। उस समय आज की तरह एक व्यापक राजनीतिक व्यवस्था नहीं थी। अनेक क्षेत्रों में स्थानीय शासक अपने-अपने राज्यों का संचालन करते थे।

राजाओं की शक्ति का आधार उनकी सेना, सामंतों का सहयोग और उनके अधीन आने वाले क्षेत्रों पर नियंत्रण था। राज्य की प्रतिष्ठा और विस्तार के लिए युद्धों का महत्त्व था।

1. अनेक राज्यों का अस्तित्व

आदिकाल के राजनीतिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता अनेक छोटे-बड़े राज्यों का अस्तित्व थी। अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न राजवंशों और स्थानीय शक्तियों का प्रभाव था। इनके बीच कभी सहयोग और कभी संघर्ष की स्थिति बनी रहती थी।

इस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में राजा और उसके योद्धाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। राज्य की सुरक्षा तथा विस्तार के लिए सैनिक शक्ति आवश्यक मानी जाती थी।

2. युद्ध और संघर्ष का वातावरण

उस समय राजनीतिक जीवन में युद्धों का महत्त्व अधिक था। राज्य की सीमाओं, सत्ता और प्रतिष्ठा को लेकर संघर्ष होते थे। युद्ध केवल राजनीतिक घटना नहीं था, बल्कि उसका प्रभाव समाज और संस्कृति पर भी पड़ता था।

युद्धों के कारण वीरता, साहस, शौर्य और त्याग जैसे गुणों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। यही कारण है कि तत्कालीन साहित्य में वीर योद्धाओं के पराक्रम और युद्ध-प्रसंगों का उल्लेख मिलता है।

3. सामंती व्यवस्था का प्रभाव

आदिकालीन समाज में सामंती प्रवृत्तियों का प्रभाव दिखाई देता है। राजा के अधीन विभिन्न सामंत और स्थानीय शासक होते थे। ये सामंत आवश्यकता पड़ने पर राजा को सैनिक सहायता प्रदान करते थे।

सामंती व्यवस्था ने समाज में पद और प्रतिष्ठा की एक विशेष संरचना विकसित की। राजा, सामंत, सैनिक और सामान्य जनता के बीच सामाजिक तथा आर्थिक अंतर मौजूद था।

इस व्यवस्था का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। राजाओं और योद्धाओं के पराक्रम का वर्णन करने वाली रचनाओं में दरबारी संस्कृति तथा सामंती जीवन-मूल्यों की छाप दिखाई देती है।

4. राजपूत शासकों की वीर परंपरा

उत्तर भारत के अनेक क्षेत्रों में राजपूत शासकों और योद्धाओं की वीर परंपरा का प्रभाव था। युद्ध में साहस, स्वाभिमान, वचन-पालन और राज्य की रक्षा जैसे मूल्यों को विशेष महत्त्व दिया जाता था।

इन्हीं मूल्यों ने वीरगाथात्मक साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने में योगदान दिया। वीरों की प्रशंसा और उनके युद्ध-पराक्रम का वर्णन साहित्य में प्रतिष्ठित हुआ।

5. बाहरी आक्रमण और राजनीतिक परिवर्तन

आदिकाल के उत्तरार्द्ध में उत्तर भारत को अनेक बाहरी आक्रमणों और राजनीतिक परिवर्तनों का सामना करना पड़ा। इन घटनाओं ने तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित किया। विभिन्न शक्तियों के बीच संघर्ष बढ़े और अनेक क्षेत्रों में सत्ता-संतुलन में परिवर्तन हुआ।

इन राजनीतिक घटनाओं का प्रभाव तत्कालीन जनजीवन पर पड़ा। युद्धों के कारण असुरक्षा की स्थिति उत्पन्न होती थी और सामान्य जनता को भी उसका प्रभाव सहना पड़ता था।

6. राजनीतिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव

तत्कालीन राजनीतिक वातावरण ने साहित्य को अनेक प्रकार से प्रभावित किया। वीरता और युद्ध से संबंधित साहित्य का विकास इसी व्यापक वातावरण में समझा जा सकता है।

साहित्य में–

युद्ध और रणभूमि के चित्र मिलते हैं।

वीर योद्धाओं के साहस का वर्णन मिलता है।

राजाओं और सामंतों की प्रशंसा की जाती है।

स्वाभिमान और प्रतिष्ठा को महत्त्व दिया जाता है।

युद्ध में विजय को गौरव का विषय माना जाता है।

त्याग और बलिदान की भावना को प्रतिष्ठित किया जाता है।

इस प्रकार आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों ने साहित्य में वीरतापरक संवेदना के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाया।

2.3.2 आदिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक परिस्थितियों की तरह आदिकाल का सामाजिक जीवन भी विविधताओं से भरा हुआ था। समाज में विभिन्न वर्गों, जातियों और समुदायों का अस्तित्व था। सामाजिक जीवन पर धार्मिक विश्वासों, परंपराओं और स्थानीय रीति-रिवाजों का गहरा प्रभाव था।

समाज को समझने के लिए केवल राजाओं और सामंतों के जीवन को देखना पर्याप्त नहीं है। सामान्य जनता, किसान, कारीगर, व्यापारी, सैनिक, साधु तथा अन्य सामाजिक समूह भी उस समय के जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे।

1. सामाजिक वर्ग-विभाजन

आदिकालीन समाज में सामाजिक स्तरों का स्पष्ट अंतर दिखाई देता था। शासक और सामंत वर्ग के पास सत्ता तथा संसाधनों का अधिक नियंत्रण था। सामान्य जनता का जीवन मुख्यतः कृषि, हस्तशिल्प, व्यापार और अन्य श्रम-आधारित कार्यों से जुड़ा था।

जाति और पेशे के बीच भी संबंध दिखाई देता था। सामाजिक व्यवस्था में जन्म और परंपरा का महत्त्व था।

2. ग्रामीण जीवन

उस समय अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती थी। कृषि जीवन का प्रमुख आधार थी। किसान अपनी आजीविका के लिए भूमि और प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर रहते थे।

ग्रामीण समाज में कृषि के साथ पशुपालन और छोटे स्तर के हस्तशिल्प का भी महत्त्व था। लोकगीत, लोककथाएँ, उत्सव और धार्मिक आयोजन ग्रामीण जीवन के प्रमुख सांस्कृतिक पक्ष थे।

3. नगर जीवन

यद्यपि ग्रामीण जीवन प्रमुख था, लेकिन नगर भी सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे। व्यापार, हस्तशिल्प, प्रशासन तथा राजकीय गतिविधियों के कारण नगरों का महत्त्व था। नगरों में व्यापारी, कारीगर, सैनिक, अधिकारी और विभिन्न व्यवसायों से जुड़े लोग रहते थे। इससे सामाजिक जीवन में विविधता आती थी।

4. स्त्रियों की स्थिति

आदिकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति एकरूप नहीं थी। अलग-अलग सामाजिक वर्गों और परिस्थितियों में महिलाओं की स्थिति में अंतर रहा होगा। राजपरिवारों की महिलाओं और सामान्य परिवारों की महिलाओं का जीवन एक जैसा नहीं था।

तत्कालीन साहित्य में स्त्री के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं–पत्नी, माता, प्रेमिका, वीरांगना आदि। इससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य में स्त्री की भूमिका केवल एक रूप तक सीमित नहीं थी।

हालाँकि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों पर अनेक सामाजिक मर्यादाएँ भी लागू थीं। परिवार और सामाजिक परंपराओं का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव था।

5. लोकजीवन

आदिकालीन सामाजिक जीवन में लोकपरंपराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। लोकगीत, लोककथाएँ, पर्व-त्योहार, विवाह-संस्कार, धार्मिक अनुष्ठान और सामुदायिक आयोजन लोगों के जीवन का हिस्सा थे।

लोकजीवन की यही विविधता आगे चलकर साहित्य को अनेक विषय और अभिव्यक्ति-रूप प्रदान करती है।

6. सामाजिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव

तत्कालीन सामाजिक जीवन का प्रभाव साहित्य में विभिन्न रूपों में दिखाई देता है। साहित्य में वीरों और राजाओं का जीवन, लोकविश्वास,, सामाजिक रीति-रिवाज,धार्मिक मान्यताएँ, प्रेम और पारिवारिक संबंध युद्ध और सामुदायिक जीवन जैसे विषयों को स्थान मिला।

इस प्रकार आदिकालीन साहित्य तत्कालीन समाज की अनेक झलकियाँ प्रस्तुत करता है।

2.3.3 आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियाँ

आदिकाल का धार्मिक जीवन अत्यंत विविधतापूर्ण था। भारतीय समाज में अनेक धार्मिक परंपराएँ और साधना-पद्धतियाँ प्रचलित थीं। धार्मिक विश्वास केवल पूजा-पद्धति तक सीमित नहीं थे, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित करते थे।

इस काल में विभिन्न धार्मिक धाराओं के साथ-साथ साधना की अनेक परंपराएँ विकसित हुईं। इनमें सिद्ध, नाथ तथा अन्य साधनात्मक परंपराओं का उल्लेख विशेष रूप से किया जाता है।

1. धार्मिक विविधता

आदिकाल में विभिन्न धार्मिक विश्वास एक साथ मौजूद थे। लोकविश्वास और परंपरागत धार्मिक मान्यताओं का भी व्यापक प्रभाव था।

धर्म व्यक्ति के दैनिक जीवन, संस्कारों और सामाजिक व्यवहार का महत्त्वपूर्ण हिस्सा था।

2. सिद्ध परंपरा

सिद्ध साहित्य में बाह्य आडंबर की अपेक्षा साधना और आंतरिक अनुभव को महत्त्व दिया गया। सिद्ध कवियों ने अपने अनुभवों को ऐसी भाषा में व्यक्त किया जो सामान्य जन के निकट थी।

उनकी भाषा और अभिव्यक्ति ने हिन्दी के आरंभिक साहित्यिक विकास में योगदान दिया।

3. नाथ परंपरा

नाथपंथ की साधना में योग और आत्मानुशासन का महत्त्व था। नाथ साहित्य में शरीर, मन, साधना और आत्मानुभूति से संबंधित विचार मिलते हैं।

नाथों की वाणी ने लोकभाषा को साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में योगदान दिया।

4. धार्मिक आडंबर का विरोध

कुछ साधनात्मक धाराओं ने धार्मिक कर्मकांड और बाहरी आडंबर पर प्रश्न उठाए। उन्होंने आंतरिक साधना, अनुभव और आत्मानुशासन पर बल दिया।

इस प्रवृत्ति ने साहित्य में सामाजिक और धार्मिक चेतना के विकास में योगदान दिया।

5. धार्मिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव

धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य में कई रूपों में दिखाई देता है–

साधना संबंधी विचार, आध्यात्मिक अनुभव, गुरु का महत्त्व, आत्मज्ञान, धार्मिक मान्यताएँ, नैतिक जीवन, कर्मकांड पर प्रश्न ।

इस प्रकार धर्म ने आदिकालीन साहित्य को केवल विषय ही नहीं दिया, बल्कि उसकी भाषा और अभिव्यक्ति को भी प्रभावित किया।

2.3.4 आदिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

संस्कृति किसी समाज के जीवन-मूल्यों, परंपराओं, कलाओं, उत्सवों, विश्वासों और व्यवहारों का व्यापक रूप है। आदिकालीन संस्कृति पर धार्मिक परंपराओं, लोकजीवन, राजदरबारों और विभिन्न सामाजिक समूहों का प्रभाव था।

1. लोकपरंपराओं का महत्त्व

लोकगीत, लोककथाएँ, उत्सव और सामुदायिक आयोजन तत्कालीन संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग थे। मौखिक परंपरा के माध्यम से अनेक कथाएँ और गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते रहे।

2 राजदरबारी संस्कृति

राजाओं और सामंतों के दरबारों में कवियों तथा कलाकारों को संरक्षण मिलता था। राजकीय प्रतिष्ठा और वीरता का प्रदर्शन दरबारी संस्कृति का महत्त्वपूर्ण पक्ष था। इसका प्रभाव वीरगाथात्मक साहित्य पर पड़ा।

3. उत्सव और पर्व

धार्मिक और सामाजिक पर्वों का जनजीवन में महत्त्व था। ये केवल धार्मिक अवसर नहीं थे, बल्कि सामाजिक मेल-जोल और सामुदायिक जीवन के अवसर भी थे।

4. संगीत और काव्

काव्य का संबंध गायन और मौखिक प्रस्तुति से भी था। अनेक रचनाएँ ऐसी थीं जिन्हें सुनाने या गाने की परंपरा रही होगी। इससे साहित्य का जनसामान्य तक पहुँचने का मार्ग सुगम हुआ।

5. सांस्कृतिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव

सांस्कृतिक जीवन ने साहित्य को विषय, भाषा और अभिव्यक्ति के अनेक रूप दिए । लोकविश्वास, वीर परंपरा, धार्मिक मान्यताएँ और सामाजिक उत्सव साहित्य में विभिन्न रूपों में आए।

2.3.5 आदिकाल की आर्थिक परिस्थितियाँ

आर्थिक जीवन का प्रभाव समाज और साहित्य दोनों पर पड़ता है। आदिकालीन अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी। इसके साथ पशुपालन, व्यापार और विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्प भी आर्थिक गतिविधियों के महत्त्वपूर्ण आधार थे।

1. कृषि का महत्त्व - कृषि सामान्य जनजीवन का प्रमुख आधार थी। ग्रामीण अर्थव्यवस्था भूमि और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर थी।

2. पशुपालन --कृषि के साथ पशुपालन भी जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। पशु कृषि, परिवहन और आर्थिक गतिविधियों में उपयोगी थे।

3. व्यापार - स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर व्यापारिक गतिविधियाँ होती थीं। नगरों और बाजारों में विभिन्न वस्तुओं का लेन-देन होता था।

4. हस्तशिल्प -- कारीगर विभिन्न प्रकार के वस्त्र, धातु-उत्पाद, मिट्टी के बर्तन और अन्य उपयोगी वस्तुएँ बनाते थे। हस्तशिल्प ने ग्रामीण और नगरीय अर्थव्यवस्था को सहारा दिया।

5. आर्थिक असमानता

समाज के सभी वर्गों के आर्थिक साधन समान नहीं थे। शासक और सामंत वर्ग की स्थिति सामान्य जनता की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक थी।

6. साहित्य पर आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव

आर्थिक जीवन की झलक साहित्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में मिलती है। राजदरबारों से जुड़े कवियों की रचनाओं में आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा मिल सकती है, जबकि लोकाभिमुख साहित्य में सामान्य जीवन की झलक दिखाई देती है।

2.3.6 आदिकाल की भाषिक परिस्थितियाँ

आदिकाल हिन्दी भाषा के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण चरण है। इस समय भाषा एक निश्चित आधुनिक रूप में स्थापित नहीं हुई थी। विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग भाषिक रूप प्रचलित थे।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की दीर्घ विकास-परंपरा से आगे चलकर अनेक जनभाषिक रूप विकसित हुए। इन्हीं भाषिक रूपों ने बाद में हिन्दी की विभिन्न बोलियों और साहित्यिक भाषाओं के विकास की पृष्ठभूमि तैयार की।

1. अपभ्रंश का प्रभाव

अपभ्रंश की विभिन्न अवस्थाओं से विकसित होते हुए जनभाषिक रूपों ने आगे चलकर उत्तर भारतीय भाषाओं के विकास में योगदान दिया।

2. लोकभाषाओं का प्रयोग

साहित्यकारों और साधकों ने जनसामान्य तक अपने विचार पहुँचाने के लिए लोकप्रचलित भाषिक रूपों का उपयोग किया। इससे साहित्य और सामान्य समाज के बीच संपर्क बढ़ा।

3. भाषिक विविधता

अलग-अलग क्षेत्रों में भाषा के अलग रूप थे। इस विविधता के कारण आदिकालीन साहित्य की भाषा भी एकरूप नहीं थी।

4. साहित्य पर भाषिक परिस्थितियों का प्रभाव

भाषिक विविधता ने साहित्य को अनेक अभिव्यक्ति-रूप प्रदान किए। आगे चलकर यही विविधता हिन्दी की समृद्ध साहित्यिक परंपरा का आधार बनी।

2.3.7 आदिकालीन शिक्षा एवं ज्ञान की परिस्थितियाँ

आदिकालीन समाज में शिक्षा की व्यवस्था आज की आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था से भिन्न थी। शिक्षा मुख्यतः धार्मिक संस्थानों, गुरुकुलों, मठों, आश्रमों और विद्वानों के माध्यम से प्राप्त की जाती थी। शिक्षा का अवसर समाज के सभी वर्गों को समान रूप से उपलब्ध नहीं था। ज्ञान का संबंध मुख्यतः धर्म, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, चिकित्सा, नीति और शास्त्रीय विषयों से था। उस समय मौखिक परंपरा का विशेष महत्त्व था। गुरु द्वारा शिष्य को ज्ञान दिया जाता था और शिष्य उसे सुनकर तथा स्मरण करके आगे बढ़ाता था। लिखित सामग्री की उपलब्धता सीमित होने के कारण स्मृति और मौखिक परंपरा ज्ञान-संरक्षण के महत्त्वपूर्ण साधन थे।

1. धार्मिक शिक्षा

शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना था। विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के अपने-अपने अध्ययन और साधना के केंद्र थे।

2. शास्त्रीय ज्ञान

व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, तर्क, धर्मशास्त्र और अन्य विषयों का अध्ययन विद्वानों के बीच प्रचलित था। इस ज्ञान-परंपरा ने साहित्य के विकास को भी प्रभावित किया।

3. साधना

सिद्ध और नाथ परंपराओं में गुरु-शिष्य संबंध का विशेष महत्त्व था। साधना, योग और आत्मानुभूति से संबंधित ज्ञान गुरु से शिष्य तक पहुँचता था।

4. लोकज्ञान

औपचारिक शिक्षा के अतिरिक्त समाज में लोकज्ञान की भी समृद्ध परंपरा थी। कृषि, मौसम, औषधि, पशुपालन, हस्तशिल्प और लोकाचार से संबंधित ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से आगे बढ़ता था।

5. साहित्य पर प्रभाव

शिक्षा और ज्ञान की इन परंपराओं का साहित्य पर प्रभाव पड़ा। धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक और साधनात्मक विचार साहित्य में अभिव्यक्त हुए। साथ ही लोकज्ञान और लोक-अनुभव ने साहित्य को जनजीवन से जोड़े रखा।

2.3.8 आदिकालीन लोकजीवन और जनसामान्य की स्थिति

आदिकालीन साहित्य को समझने के लिए केवल राजाओं और दरबारों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। उस समय का वास्तविक सामाजिक जीवन सामान्य जनता के अनुभवों, श्रम, उत्सवों, रीति-रिवाजों और लोकविश्वासों से भी निर्मित होता था।

अधिकांश जनसंख्या का जीवन कृषि और उससे जुड़े कार्यों पर निर्भर था। ग्रामीण समुदायों में परिवार, जाति, व्यवसाय और स्थानीय परंपराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

1. किसान जीवन

कृषि सामान्य जनता की आजीविका का प्रमुख साधन थी। किसान प्राकृतिक परिस्थितियों पर काफी निर्भर रहते थे। वर्षा, भूमि की उर्वरता और कृषि-उत्पादन का सीधा संबंध उनके जीवन से था।

2. कारीगर और श्रमिक

विभिन्न प्रकार के कारीगर समाज की आर्थिक व्यवस्था में योगदान करते थे। बुनकर, धातु-कर्मी, कुम्हार, बढ़ई तथा अन्य हस्तशिल्पी अपनी-अपनी कला और श्रम से समाज की आवश्यकताओं को पूरा करते थे।

3. व्यापारी वर्ग

स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर व्यापारिक गतिविधियाँ भी होती थीं। बाजार सामाजिक संपर्क के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे।

4. लोकविश्वास

सामान्य जनता के जीवन में धार्मिक विश्वासों के साथ अनेक लोकविश्वास भी जुड़े थे। शुभ-अशुभ, देवी-देवताओं, प्रकृति और विभिन्न संस्कारों से संबंधित मान्यताएँ सामाजिक जीवन का हिस्सा थीं।

5. उत्सव और मनोरंजन

पर्व, मेले, लोकगीत, कथाएँ, नृत्य और सामुदायिक आयोजन जनसामान्य के मनोरंजन और सामाजिक मेल-जोल के साधन थे।

6. लोकजीवन और साहित्य

लोकजीवन ने साहित्य को अनेक विषय प्रदान किए। वीरता, प्रेम, परिवार, धर्म, लोकविश्वास और सामाजिक संबंधों के अनेक रूप साहित्य में दिखाई देते हैं।

इस प्रकार आदिकालीन साहित्य केवल राजदरबारों का साहित्य नहीं था। उसकी पृष्ठभूमि में सामान्य जनजीवन और लोकसंस्कृति भी सक्रिय थी।

2.3.9 तत्कालीन परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव

साहित्य समाज का संवेदनात्मक दस्तावेज माना जा सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि साहित्य इतिहास की घटनाओं को हूबहू दर्ज करता है, बल्कि यह कि किसी युग की मानसिकता, मूल्य, संघर्ष और अनुभव साहित्य में किसी न किसी रूप में प्रतिबिंबित होते हैं। आदिकालीन साहित्य पर तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का संयुक्त प्रभाव पड़ा।

1. राजनीतिक प्रभाव

राजनीतिक संघर्ष और युद्धों के वातावरण ने वीरता, शौर्य और पराक्रम को साहित्य का महत्त्वपूर्ण विषय बनाया।

2. सामाजिक प्रभाव

सामाजिक जीवन की विविधता ने साहित्य को अनेक विषय दिए। परिवार, समाज, लोकाचार और मानवीय संबंधों की झलक रचनाओं में मिलती है।

3. धार्मिक प्रभाव

विभिन्न धार्मिक और साधनात्मक परंपराओं ने आध्यात्मिक तथा नैतिक विषयों को साहित्य में स्थान दिया।

4. सांस्कृतिक प्रभाव

लोकपरंपराओं, राजदरबारी संस्कृति और धार्मिक उत्सवों का प्रभाव साहित्य की विषयवस्तु और अभिव्यक्ति पर पड़ा।

5. भाषिक प्रभाव

भाषा के संक्रमणशील रूप के कारण आदिकालीन साहित्य में अपभ्रंश और विकसित होती लोकभाषाओं के अनेक रूप दिखाई देते हैं। शैक्षिक स्रोत भी इस काल को भाषा और साहित्य दोनों की दृष्टि से संक्रमणशील चरण के रूप में देखते हैं।

6. आश्रय-परंपरा का प्रभाव

राजाओं और सामंतों के आश्रय में रहने वाले कवियों के साहित्य में आश्रयदाता की प्रशंसा का पक्ष दिखाई दे सकता है। वीरगाथात्मक साहित्य में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

2.3.10 आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विकास

आदिकालीन साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी विविधता है। इस काल को केवल एक साहित्यिक धारा के आधार पर समझना उचित नहीं होगा। उपलब्ध साहित्य में धार्मिक, साधनात्मक, वीरतापरक तथा लौकिक प्रवृत्तियों के अलग-अलग रूप दिखाई देते हैं। शैक्षिक

स्रोत भी आदिकालीन साहित्य में सिद्ध, नाथ, जैन, रासो तथा अन्य साहित्यिक परंपराओं का उल्लेख करते हैं।

1. वीरतापरक प्रवृत्ति

राजनीतिक संघर्ष और युद्धप्रधान वातावरण के कारण वीरता का साहित्यिक महत्त्व बढ़ा।

योद्धाओं के साहस, युद्ध-कौशल, स्वाभिमान और पराक्रम का वर्णन किया गया।

2. धार्मिक प्रवृत्ति

धर्म और साधना से जुड़े साहित्य में आध्यात्मिक अनुभव, गुरु, आत्मज्ञान और नैतिक जीवन जैसे विषयों को महत्त्व मिला।

3. साधनात्मक प्रवृत्ति

सिद्ध और नाथ परंपराओं में साधना और योग से संबंधित विचारों को साहित्यिक अभिव्यक्ति मिली।

4. जैन साहित्यिक प्रवृत्त

जैन कवियों ने धार्मिक और नैतिक मूल्यों को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया। उनके साहित्य में चरित-काव्य तथा धार्मिक कथानक का महत्त्व दिखाई देता है।

5. लोकाभिमुख प्रवृत्ति

साहित्य में जनजीवन और लोकपरंपराओं की उपस्थिति भी दिखाई देती है। इससे साहित्य केवल राजकीय या धार्मिक वर्ग तक सीमित नहीं रहा।

6. शृंगारिक प्रवृत्ति

आदिकालीन साहित्य में वीरता के साथ प्रेम और शृंगार के प्रसंग भी मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन साहित्य की संवेदना बहुआयामी थी।

7. नीति और जीवन-दर्शन

कुछ रचनाओं में नीति, सदाचार और जीवन के व्यवहारिक पक्षों से संबंधित विचार मिलते हैं। इस प्रकार आदिकालीन साहित्य अनेक प्रवृत्तियों के निर्माण और विकास का काल था।

2.3.11 आदिकाल की परिस्थितियों और साहित्य का अंतर्संबंध

आदिकालीन परिस्थितियों और साहित्य के बीच गहरा संबंध था। साहित्य ने तत्कालीन समाज को केवल प्रतिबिंबित ही नहीं किया, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को व्यक्त करने तथा आगे पहुँचाने का कार्य भी किया।

राजनीतिक जीवन ने वीरता और पराक्रम को महत्त्व दिया। धार्मिक परिस्थितियों ने साधना और आध्यात्मिक चिंतन को प्रभावित किया। सामाजिक जीवन ने लोक और पारिवारिक विषयों को साहित्य में स्थान दिया। सांस्कृतिक जीवन ने लोकपरंपराओं, उत्सवों और जीवन-मूल्यों को साहित्य से जोड़ा।

इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

तत्कालीन परिस्थिति	साहित्य पर प्रभाव
राजनीतिक संघर्ष	वीरता एवं शौर्य
सामंती व्यवस्था	आश्रयदाता एवं दरबारी संस्कृति
धार्मिक विविधता	साधना एवं धार्मिक साहित्य
लोकजीवन	लोकभाषा एवं लोक-अनुभव
सांस्कृतिक परंपराएँ	उत्सव, लोकाचार एवं जीवन-मूल्य
भाषिक परिवर्तन	विविध भाषिक रूपों का साहित्य में प्रवेश
सामाजिक संरचना	सामाजिक संबंधों और जीवन की अभिव्यक्ति
आर्थिक जीवन सा	मान्य जनजीवन की पृष्ठभूमि

2.4 अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1 आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

प्रश्न 2 आदिकालीन समाज में कृषि का क्या महत्त्व था?

प्रश्न 3 आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्रश्न 4 सिद्ध और नाथ परंपराओं का आदिकालीन साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा?

प्रश्न 5 आदिकालीन लोकजीवन की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

प्रश्न 6 आदिकालीन भाषा की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं?

2.5 सारांश

आदिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारंभिक और महत्त्वपूर्ण कालखंड है। इसके नामकरण को लेकर विभिन्न साहित्योतिहासकारों ने अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं। वीरगाथा काल, चारण काल, सिद्ध-सामंत-युग आदि नाम इस काल की विभिन्न विशेषताओं को व्यक्त करते हैं।

आदिकाल का राजनीतिक वातावरण संघर्षों और अनेक राज्यों की उपस्थिति से प्रभावित था। युद्ध और वीरता को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इसका प्रभाव वीरतापरक साहित्य पर पड़ा।

सामाजिक जीवन में विभिन्न वर्गों, जातियों और समुदायों की उपस्थिति थी। ग्रामीण जीवन में कृषि प्रमुख आधार थी। लोकपरंपराएँ, उत्सव और लोकविश्वास जनजीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे।

धार्मिक क्षेत्र में अनेक परंपराएँ सक्रिय थीं। सिद्ध, नाथ और जैन जैसी धाराओं ने साहित्य को धार्मिक, साधनात्मक और नैतिक विषय प्रदान किए।

आर्थिक जीवन में कृषि, पशुपालन, व्यापार और हस्तशिल्प का महत्त्व था। शिक्षा की व्यवस्था मुख्यतः पारंपरिक संस्थाओं और गुरु-शिष्य परंपरा से जुड़ी थी।

भाषिक दृष्टि से आदिकाल संक्रमण का समय था। अपभ्रंश और विकसित होती लोकभाषाओं के विभिन्न रूपों ने साहित्य को प्रभावित किया।

इस प्रकार आदिकालीन साहित्य तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भाषिक परिस्थितियों से गहराई से जुड़ा हुआ था। इसकी प्रमुख विशेषता साहित्यिक विविधता है।

2.6 मुख्य शब्द

आदिकाल – हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारंभिक कालखंड।

नामकरण – किसी काल या साहित्यिक प्रवृत्ति को उसकी प्रमुख विशेषताओं के आधार पर दिया गया नाम।

सामंत – मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था में राजा के अधीन प्रभावशाली स्थानीय शासक या प्रभुत्वशाली व्यक्ति।

सिद्ध – साधना-परंपरा से जुड़े साधक, जिनकी वाणी में आध्यात्मिक और अनुभवपरक विचार मिलते हैं।

नाथ – योग एवं साधना की परंपरा से जुड़े साधक-संतों की परंपरा।

लोकजीवन – सामान्य जनता के दैनिक जीवन, रीति-रिवाज, विश्वास, परंपरा और व्यवहार का समग्र रूप।

लोकपरंपरा – पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली जनसामान्य की सांस्कृतिक एवं सामाजिक परंपराएँ।

अपभ्रंश – मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के विकासक्रम की एक महत्त्वपूर्ण अवस्था।

मानसिकता – किसी समय या समाज के लोगों के सामान्य विचारों और दृष्टिकोणों का स्वरूप।

संक्रमणकाल – दो भाषिक, साहित्यिक या ऐतिहासिक अवस्थाओं के बीच परिवर्तन का समय।

2.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

(क) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आदिकाल के नामकरण की समस्या का प्रमुख कारण क्या है?

(क) साहित्य का पूर्ण अभाव
(ख) साहित्यिक विविधता

(ग) केवल भाषा की कठिनाई

(घ) केवल धार्मिक मतभेद

2. आदिकालीन अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार क्या था?

(क) उद्योग

(ख) कृषि

(ग) आधुनिक व्यापार

(घ) बैंकिंग

3. सिद्ध और नाथ साहित्य में किस पक्ष को विशेष महत्त्व मिला?

(क) वैज्ञानिक प्रयोग

(ख) साधना और आध्यात्मिक अनुभव

(ग) आधुनिक राजनीति

(घ) औद्योगिक जीवन

4. आदिकालीन साहित्य की प्रमुख विशेषता क्या है?

(क) केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति

(ख) साहित्यिक विविधता

(ग) केवल गद्य

(घ) केवल नाटक

उत्तर

1. (ख) साहित्यिक विविधता

2. (ख) कृषि

3. (ख) साधना और आध्यात्मिक अनुभव

4. (ख) साहित्यिक विविधता

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2. आदिकालीन सामाजिक जीवन की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

3. आदिकाल में लोकजीवन का क्या महत्त्व था?

4. आदिकाल की धार्मिक विविधता को स्पष्ट कीजिए।

5. आदिकालीन साहित्य में वीरता की प्रवृत्ति क्यों विकसित हुई?

6. आदिकालीन भाषिक परिस्थितियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

7. आदिकालीन शिक्षा-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

8. आदिकाल की आर्थिक परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(ग) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आदिकाल के नामकरण की समस्या पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

2. आदिकाल की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

3. आदिकाल की धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

4. आदिकाल की आर्थिक एवं भाषिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

5. तत्कालीन परिस्थितियों का आदिकालीन साहित्य पर पड़े प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

6. "आदिकालीन साहित्य विविध साहित्यिक प्रवृत्तियों का काल है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

7. आदिकाल की परिस्थितियों और साहित्य के अंतर्संबंध पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

2.8 अपनी प्रगति जाँचें के संकेतात्मक उत्तर

1. आदिकाल का राजनीतिक वातावरण संघर्षों और अनेक राज्यों की उपस्थिति से प्रभावित था। युद्ध और वीरता को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इसका प्रभाव वीरतापरक साहित्य पर पड़ा । आदिकाल में अनेक साहित्यिक धाराएँ सक्रिय थीं। इसी विविधता के कारण इसके नामकरण को लेकर मतभेद उत्पन्न हुए।

2 आदिकालीन अर्थव्यवस्था में कृषि की प्रमुख भूमिका थी। इसके साथ पशुपालन,

व्यापार और हस्तशिल्प भी आर्थिक जीवन के आधार थे।

3 धार्मिक क्षेत्र में अनेक परंपराएँ सक्रिय थीं। सिद्ध, नाथ और जैन जैसी धाराओं ने तत्कालीन धार्मिक और साहित्यिक जीवन को प्रभावित किया।

4 सिद्ध और नाथ परंपराओं ने साधना, आत्मानुभूति, गुरु और योग संबंधी विचारों को साहित्य में स्थान दिया तथा लोकभाषिक अभिव्यक्ति को बल दिया।

5 राजनीतिक संघर्ष और युद्धों के वातावरण के कारण वीरता, शौर्य और पराक्रम को सामाजिक महत्त्व मिला। इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ा।

6 आदिकाल भाषिक संक्रमण का समय था। अपभ्रंश से विकसित होते हुए विभिन्न लोकभाषिक रूप साहित्य में प्रयुक्त हुए।

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास।

2. हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास।

3. रामकुमार वर्मा – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

4. राहुल सांकृत्यायन – हिन्दी साहित्य के इतिहास संबंधी लेखन।

5. भोलानाथ तिवारी – हिन्दी भाषा और साहित्य से संबंधित अध्ययन।

6. नगेंद्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास।

7. हिन्दी साहित्य के आदिकाल संबंधी विश्वविद्यालयीय अध्ययन-सामग्री।

8. विश्वविद्यालयों द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य के इतिहास एवं आदिकाल संबंधी अध्ययन-सामग्री।

कोर्ड कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या : 3	Vetter : Dr. कमलेश देवी
इकाई - 2 भक्तिकाल की परिस्थितियां	

3.0 उद्देश्य (Objectives)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ (Conditions of the Bhakti Period)

3.2.1 i राजनीतिक परिस्थितियां

Ii सामाजिक परिस्थितियाँ

3.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

3.31 धार्मिक परिस्थितियाँ

I) हिन्दू धर्म की स्थिति (Condition of Hindu Religion)

Ii) इस्लाम धर्म का प्रभाव (Influence of Islam)

Iii) धार्मिक आडम्बर एवं रूढ़ियाँ (Religious Rituals and Superstitions

Iv) भक्ति आन्दोलन का उदय (Rise of the Bhakti Movement)

v) निर्गुण एवं सगुण भक्ति (Nirguna and Saguna Bhakti)

vi) सूफी मत का प्रभाव (Influence of Sufis

3.3.2 धार्मिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव (Impact of Religious Conditions on Literature)

3..3.3 धार्मिक परिस्थितियों का समग्र मूल्यांकन (Overall Evaluation of Religious Conditions)

3.3.4 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ (Cultural Conditions)

i) भारतीय संस्कृति का समन्वयवादी स्वरूप

ii) लोक संस्कृति का विकास

iii) कला एवं संगीत का विकास

iv) सांस्कृतिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव

v) सांस्कृतिक परिस्थितियों का समग्र मूल्यांकन

3.3.5 साहित्यिक परिस्थितियाँ (Literary Conditions

i) भाषा का विकास

ii) साहित्य की प्रमुख धाराएँ

iii) साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

iv) साहित्यिक परिस्थितियों का समग्र मूल्यांकन

3.4 अपनी प्रगति जांचें

3..5. सारांश (Summary)

3.6 मुख्य शब्द (Keywords)

3.7 स्वमूल्यांकन (Self-Assessment Test)

3.8 अपनी प्रगति जाँचें – उत्तर संकेत (Answer Hints)

3.9 संदर्भ ग्रंथ (References / Suggested Readings)

3 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

3 .0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी–

1. भक्तिकाल की समय-सीमा एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
2. भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. उस समय की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का अध्ययन कर सकेंगे।
4. भक्तिकालीन साहित्य पर तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगे।
5. भक्ति आन्दोलन के उद्भव एवं विकास के कारणों को समझ सकेंगे।
6. भक्तिकालीन साहित्य की विशेषताओं एवं उसकी प्रासंगिकता का विवेचन कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय युग माना जाता है। सामान्यतः इसका समय 1375 ई. से 1700 ई. तक स्वीकार किया जाता है। इस काल में हिंदी साहित्य ने विषय-वस्तु, भाषा, शैली तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उल्लेखनीय प्रगति की। इस युग के कवियों ने साहित्य को केवल राजाओं और दरबारों तक सीमित न रखकर सामान्य जनता के जीवन से जोड़ा। फलस्वरूप हिंदी साहित्य पहली बार व्यापक रूप से जनसाहित्य के रूप में विकसित हुआ

भक्तिकाल का उद्भव किसी एक घटना का परिणाम नहीं था, बल्कि उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम था। देश में विदेशी शासन स्थापित हो चुका था। राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक विषमता, जाति-पाँति का भेदभाव, धार्मिक आडम्बर तथा आर्थिक कठिनाइयों से सामान्य जनता का जीवन अत्यंत

कष्टपूर्ण हो गया था। ऐसे समय में संतों और भक्त कवियों ने प्रेम, समानता, मानवता तथा ईश्वर-भक्ति का संदेश देकर समाज को नई दिशा प्रदान की।

भक्तिकाल के कवियों ने यह प्रतिपादित किया कि ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी विशेष जाति, वर्ग, सम्प्रदाय या कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं है। सच्चे मन से की गई भक्ति ही मोक्ष का मार्ग है। इसी कारण कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, गुरु नानक, रैदास, दादूदयाल आदि कवियों की वाणी जन-जन तक पहुँची और आज भी उतनी ही प्रासंगिक है

भक्तिकाल का साहित्य केवल धार्मिक भावना का परिचायक नहीं है, बल्कि उसमें सामाजिक सुधार, मानवीय मूल्यों, राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक समन्वय की भावना भी विद्यमान है। इसलिए भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का "स्वर्णयुग" भी कहा जाता है।

3.2 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ (Conditions of the Bhakti Period)

भक्तिकाल की परिस्थितियों का अध्ययन निम्नलिखित प्रमुख शीर्षकों के अंतर्गत किया जाता है–

राजनीतिक परिस्थितियाँ

सामाजिक परिस्थितियाँ

धार्मिक परिस्थितियाँ

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

साहित्यिक परिस्थितियाँ

इन सभी परिस्थितियों ने मिलकर भक्ति आन्दोलन तथा भक्तिकालीन साहित्य को जन्म दिया। प्रत्येक परिस्थिति का प्रभाव साहित्य की विषय-वस्तु, भाषा, शैली तथा विचारधारा पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

3.2.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ (Political Conditions)

भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ अत्यंत जटिल एवं परिवर्तनशील थीं। इस समय भारत में दिल्ली सल्तनत के अंतिम शासकों का शासन था तथा बाद में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई। सत्ता परिवर्तन, विदेशी आक्रमण, युद्ध, प्रशासनिक परिवर्तन तथा सामन्ती व्यवस्था ने जनता के जीवन को गहराई से प्रभावित किया।

राजनीतिक अस्थिरता के कारण जनता अपने भविष्य को लेकर चिंतित रहती थी। शासकों के बीच निरन्तर संघर्ष, अत्यधिक कर, युद्ध तथा असुरक्षा की भावना ने लोगों को मानसिक रूप से कमजोर बना दिया। ऐसी परिस्थितियों में लोगों का विश्वास सांसारिक शक्ति से हटकर ईश्वर की ओर बढ़ने लगा। यही प्रवृत्ति आगे चलकर भक्ति आन्दोलन के विकास का प्रमुख कारण बनी।

भक्तिकालीन कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से राजनीति का वर्णन कम किया, किन्तु उनके साहित्य में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का अप्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उन्होंने समाज में शान्ति, प्रेम, समानता तथा नैतिक जीवन का संदेश दिया।

i) दिल्ली सल्तनत का शासन

भक्तिकाल के प्रारम्भिक समय में भारत पर दिल्ली सल्तनत का शासन था। तुगलक, सैय्यद तथा लोदी वंश के शासकों ने शासन किया। इस काल में अनेक राजनीतिक संघर्ष, विद्रोह तथा सत्ता परिवर्तन हुए। शासन की स्थिरता बार-बार प्रभावित होती रही, जिससे सामान्य जनता को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

विदेशी शासन के कारण भारतीय समाज में नई राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई। अनेक स्थानों पर प्रशासनिक परिवर्तन हुए तथा स्थानीय राजाओं की शक्ति कम होने लगी। इससे समाज में असुरक्षा तथा भय का वातावरण उत्पन्न हुआ।

राजनीतिक संघर्षों का प्रभाव केवल शासन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसका प्रभाव सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पर भी पड़ा। लोगों ने सांसारिक वैभव की अपेक्षा आध्यात्मिक शान्ति की खोज प्रारम्भ की। संत कवियों ने इसी मनोस्थिति को समझते हुए ईश्वर-भक्ति, प्रेम तथा आत्मिक शान्ति का संदेश दिया।

इस प्रकार दिल्ली सल्तनत का शासन भक्तिकालीन परिस्थितियों का एक महत्त्वपूर्ण आधार बना। इसने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से भक्ति आन्दोलन के विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया।

Ii) मुगल शासन का प्रभाव (Impact of the Mughal Rule)

भक्तिकाल के मध्य एवं उत्तरार्द्ध में भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई। सन् 1526 ई. में बाबर ने पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित कर मुगल शासन की नींव रखी। इसके बाद हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब जैसे शासकों ने शासन किया। मुगल शासन का भारतीय समाज, संस्कृति तथा साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा।

मुगल शासन के प्रारम्भिक काल में राजनीतिक संघर्ष अवश्य रहे, किन्तु अकबर के शासनकाल में साम्राज्य को स्थिरता प्राप्त हुई। अकबर ने धार्मिक सहिष्णुता, प्रशासनिक सुधार तथा सांस्कृतिक समन्वय की नीति अपनाई। उसने विभिन्न धर्मों के विद्वानों को सम्मान दिया तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता को प्रोत्साहित किया। इससे समाज में अपेक्षाकृत शान्ति एवं सौहार्द का वातावरण बना।

यद्यपि बाद के कुछ शासकों के समय धार्मिक कट्टरता भी देखने को मिली, फिर भी भक्ति आन्दोलन की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रही। संत कवियों ने सत्ता के प्रभाव से दूर रहकर मानवता, प्रेम, समानता तथा ईश्वर-भक्ति का संदेश दिया।

मुगल शासन के समय कला, स्थापत्य, संगीत एवं चित्रकला का भी उल्लेखनीय विकास हुआ। इस सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा और साहित्य अधिक समृद्ध एवं व्यापक बन गया।

Iii) राजनीतिक अस्थिरता एवं सत्ता संघर्ष (Political Instability and Power Struggle)

भक्तिकाल का एक प्रमुख राजनीतिक पक्ष सत्ता संघर्ष था। दिल्ली सल्तनत के अंतिम चरण से लेकर मुगल शासन के प्रारम्भ तक अनेक युद्ध, विद्रोह तथा उत्तराधिकार संबंधी संघर्ष हुए। इन घटनाओं ने देश की राजनीतिक व्यवस्था को बार-बार प्रभावित किया।

लगातार होने वाले युद्धों के कारण जनता को भारी आर्थिक एवं सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कृषि प्रभावित हुई, व्यापार में बाधाएँ आईं तथा अनेक क्षेत्रों में असुरक्षा का वातावरण बन गया। सामान्य जनता का जीवन संकटपूर्ण हो गया।

ऐसी परिस्थितियों में लोगों का विश्वास सांसारिक शक्ति की अपेक्षा ईश्वर की शक्ति में अधिक बढ़ा। संतों और भक्त कवियों ने लोगों को धैर्य, प्रेम, करुणा तथा आत्मबल का संदेश दिया। उन्होंने यह बताया कि संसार नश्वर है और वास्तविक शान्ति ईश्वर की भक्ति में ही प्राप्त होती है।

राजनीतिक अस्थिरता ने भक्ति आन्दोलन को अप्रत्यक्ष रूप से गति प्रदान की, क्योंकि लोगों को मानसिक एवं आध्यात्मिक आधार की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी।

Iv) प्रशासनिक व्यवस्था (Administrative System)

भक्तिकाल में प्रशासनिक व्यवस्था मुख्यतः सुल्तानों एवं मुगल सम्राटों के अधीन थी। शासन का सर्वोच्च अधिकार राजा या सम्राट के पास होता था। उसके अधीन विभिन्न अधिकारी प्रशासन, न्याय, कर-वसूली तथा सेना का संचालन करते थे।

मुगल शासन में प्रशासन अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित था। साम्राज्य को विभिन्न प्रान्तों में विभाजित किया गया था तथा प्रत्येक प्रान्त में अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। भूमि से कर वसूला जाता था, जो राज्य की आय का मुख्य स्रोत था।

किन्तु अनेक स्थानों पर करों का बोझ अधिक होने के कारण किसानों एवं सामान्य जनता को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। सामन्तों और स्थानीय अधिकारियों द्वारा भी कभी-कभी जनता का शोषण किया जाता था।

इन परिस्थितियों ने समाज में असंतोष उत्पन्न किया। भक्त कवियों ने इस प्रकार की विषमताओं की आलोचना करते हुए न्याय, समानता और मानवता पर आधारित समाज की कल्पना प्रस्तुत की।

V) राजनीतिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव (Impact of Political Conditions on Literature)

भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का हिंदी साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। यद्यपि भक्त कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से राजाओं की प्रशंसा या युद्धों का वर्णन कम किया, फिर भी उनके साहित्य में तत्कालीन परिस्थितियों की स्पष्ट झलक मिलती है।

राजनीतिक अस्थिरता के कारण जनता के मन में उत्पन्न भय, निराशा और असुरक्षा को भक्त कवियों ने भक्ति, प्रेम और विश्वास के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने ईश्वर को मानव जीवन का सर्वोच्च आधार माना।

कबीर ने धार्मिक एवं सामाजिक पाखण्डों का विरोध करते हुए सत्य और मानवता का संदेश दिया। गुरु नानक ने समानता एवं भाईचारे पर बल दिया। तुलसीदास ने 'रामराज्य' की कल्पना प्रस्तुत कर आदर्श शासन व्यवस्था का चित्रण किया। सूरदास ने भक्ति के माध्यम से मानव जीवन में प्रेम एवं करुणा का महत्व स्थापित किया।

इस प्रकार भक्तिकालीन साहित्य जनता की आशाओं, आस्थाओं और जीवन-संघर्षों का सशक्त प्रतिनिधि बनकर सामने आया।

Vi) राजनीतिक परिस्थितियों का समग्र मूल्यांकन (Overall Evaluation of Political Conditions)

भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ अनेक विरोधाभासों से युक्त थीं। एक ओर विदेशी शासन, सत्ता संघर्ष, युद्ध एवं आर्थिक कठिनाइयाँ थीं, तो दूसरी ओर अकबर जैसे शासकों की उदार नीतियों ने सांस्कृतिक समन्वय को भी बढ़ावा दिया।

इन परिस्थितियों ने जनता को सांसारिक जीवन की क्षणभंगुरता का अनुभव कराया और लोगों का झुकाव आध्यात्मिकता एवं ईश्वर-भक्ति की ओर बढ़ा। यही कारण है कि भक्ति आन्दोलन को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त हुआ।

राजनीतिक परिस्थितियों ने भक्तिकालीन साहित्य को अप्रत्यक्ष रूप से गहराई प्रदान की। साहित्य में प्रेम, करुणा, समानता, सहिष्णुता, नैतिकता तथा मानव कल्याण जैसे जीवन-मूल्यों की स्थापना हुई। यही मूल्य आज भी भक्तिकालीन साहित्य को कालजयी बनाते हैं।

3.2.2 सामाजिक परिस्थितियाँ (Social Conditions)

भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ अत्यन्त जटिल एवं विरोधाभासपूर्ण थीं। एक ओर भारतीय समाज प्राचीन परम्पराओं, धार्मिक मान्यताओं तथा सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ा हुआ था, तो दूसरी ओर जाति-भेद, ऊँच-नीच, छुआछूत, स्त्री-असमानता तथा सामाजिक रूढ़ियों जैसी अनेक समस्याएँ भी विद्यमान थीं। विदेशी शासन और राजनीतिक अस्थिरता ने इन समस्याओं को और अधिक बढ़ा दिया।

समाज में उच्च और निम्न वर्ग के बीच गहरी खाई बन चुकी थी। निम्न वर्ग के लोगों को सामाजिक सम्मान प्राप्त नहीं था। धार्मिक कर्मकाण्डों और जातिगत भेदभाव के कारण सामान्य जनता अनेक प्रकार के शोषण का शिकार थी। ऐसी परिस्थितियों में संत कवियों ने समानता, प्रेम, मानवता तथा भाईचारे का संदेश देकर समाज में नई चेतना का संचार किया।

भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भक्त कवियों ने अपने साहित्य में समाज की वास्तविक समस्याओं को चित्रित करते हुए सुधार की प्रेरणा दी

i) वर्ण एवं जाति व्यवस्था (Varna and Caste System)

भक्तिकाल में वर्ण व्यवस्था अत्यधिक कठोर हो चुकी थी। समाज मुख्यतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों में विभाजित था। समय के साथ यह व्यवस्था हजारों जातियों और उपजातियों में बदल गई।

जाति के आधार पर व्यक्ति के अधिकार, व्यवसाय, शिक्षा तथा सामाजिक सम्मान का निर्धारण किया जाता था। निम्न जातियों के लोगों को अनेक प्रकार के सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था। उन्हें मंदिरों में प्रवेश, शिक्षा प्राप्त करने तथा सामाजिक जीवन में समान अवसर नहीं मिलते थे।

संत कवियों ने इस व्यवस्था का खुलकर विरोध किया। कबीर, रैदास, गुरु नानक और दादूदयाल ने कहा कि मनुष्य की पहचान उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके कर्म, चरित्र और भक्ति से होती है।

जाति व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ

जन्म के आधार पर सामाजिक स्थिति का निर्धारण।

ऊँच-नीच की भावना का प्रबल होना।

सामाजिक भेदभाव एवं छुआछूत का प्रसार।

निम्न वर्ग का आर्थिक एवं सामाजिक शोषण।

संत कवियों द्वारा समानता का समर्थन।

Ii) सामाजिक विषमता एवं ऊँच-नीच (Social Inequality)

भक्तिकालीन समाज में सामाजिक असमानता अत्यधिक बढ़ गई थी। समाज दो प्रमुख वर्गों—धनवान एवं निर्धन—में विभाजित था। उच्च वर्ग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करता था, जबकि सामान्य जनता कठिन जीवन जीने को विवश थी।

जातिगत भेदभाव के कारण समाज में परस्पर सहयोग और भाईचारे की भावना कमजोर होती जा रही थी। निम्न वर्ग के लोगों को सम्मानजनक जीवन प्राप्त नहीं था।

भक्त कवियों ने इन सामाजिक विषमताओं का विरोध करते हुए मानव समानता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं और किसी भी प्रकार का भेदभाव उचित नहीं है।

Iii) स्त्रियों की स्थिति (Status of Women)

भक्तिकाल में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। समाज पुरुष-प्रधान था तथा महिलाओं को सीमित अधिकार प्राप्त थे। उनका जीवन मुख्यतः परिवार तक सीमित माना जाता था।

बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा तथा शिक्षा का अभाव जैसी समस्याएँ स्त्रियों के विकास में बाधक थीं। अनेक स्थानों पर महिलाओं को स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार भी प्राप्त नहीं था।

यद्यपि समाज में स्त्रियों की स्थिति कठिन थी, फिर भी भक्तिकाल में मीराबाई जैसी महान भक्त कवयित्री ने सामाजिक बन्धनों को तोड़कर भक्ति और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का आदर्श प्रस्तुत किया। उनके व्यक्तित्व ने यह सिद्ध किया कि भक्ति के मार्ग में स्त्री और पुरुष दोनों समान हैं।

स्त्रियों की स्थिति की प्रमुख विशेषताएँ

पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था।

बाल-विवाह एवं पर्दा-प्रथा का प्रचलन।

शिक्षा के अवसरों का अभाव।

धार्मिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता सीमित।

मीराबाई जैसी भक्त कवयित्री द्वारा सामाजिक चेतना का प्रसार।

Iv) शिक्षा एवं सामाजिक जीवन (Education and Social Life)

भक्तिकाल में शिक्षा मुख्यतः गुरुकुलों, मठों, मंदिरों तथा मदरसों में दी जाती थी। शिक्षा का अधिकार सभी वर्गों को समान रूप से प्राप्त नहीं था। सामान्य जनता और निम्न वर्ग शिक्षा से काफी हद तक वंचित थे।

भक्त कवियों ने लोकभाषा को अपनाकर ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाया। उन्होंने संस्कृत जैसी कठिन भाषा के स्थान पर अवधी, ब्रजभाषा, पंजाबी, राजस्थानी तथा अन्य लोकभाषाओं में रचनाएँ कीं। इससे शिक्षा और ज्ञान का प्रसार व्यापक स्तर पर हुआ।

भक्ति आन्दोलन ने यह सिद्ध किया कि ज्ञान केवल विद्वानों की संपत्ति नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है।

V) सामाजिक परिस्थितियों का समग्र मूल्यांकन (Overall Evaluation of Social Conditions)

भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ अनेक विसंगतियों से युक्त थीं। जाति-भेद, ऊँच-नीच, सामाजिक विषमता, स्त्री-असमानता तथा धार्मिक रूढ़ियों ने समाज को विभाजित कर दिया था। इन परिस्थितियों ने सामान्य जनता को मानसिक एवं सामाजिक रूप से प्रभावित किया।

ऐसे समय में संतों और भक्त कवियों ने समाज में प्रेम, समानता, सहिष्णुता, मानवता तथा सामाजिक समरसता का संदेश दिया। उन्होंने लोकभाषाओं के माध्यम से समाज के प्रत्येक वर्ग तक अपनी वाणी पहुँचाई और सामाजिक सुधार का मार्ग प्रशस्त किया।

इस प्रकार भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ केवल समस्याओं का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि उनके समाधान की दिशा भी प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि भक्तिकालीन साहित्य आज भी सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों का प्रेरणास्रोत माना जाता है।

3.3. पाठ के आगे का मुख्य भाग

भक्तिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का समग्र अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह काल केवल धार्मिक जागरण का युग नहीं था, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन का भी महत्वपूर्ण काल था। तत्कालीन परिस्थितियों ने संतों एवं भक्त कवियों को समाज सुधार, मानवता, समानता तथा प्रेम का संदेश देने के लिए प्रेरित किया।

भक्तिकालीन साहित्य में तत्कालीन जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण होने के साथ-साथ उनके समाधान का मार्ग भी प्रस्तुत किया गया है। इस युग की रचनाएँ आज भी सामाजिक समरसता, नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों की प्रेरणा देती हैं।

3.3.1 धार्मिक परिस्थितियाँ (Religious Conditions)

भक्तिकाल की धार्मिक परिस्थितियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं परिवर्तनशील थीं। इस काल में भारत में अनेक धार्मिक परम्पराएँ, सम्प्रदाय तथा मत-मतान्तर प्रचलित थे। हिन्दू धर्म,

इस्लाम, जैन धर्म, बौद्ध धर्म तथा सूफी मत का समाज पर व्यापक प्रभाव था। यद्यपि धार्मिक जीवन समृद्ध था, फिर भी उसमें अनेक प्रकार की रूढ़ियाँ, कर्मकाण्ड, आडम्बर तथा कट्टरता भी व्याप्त थी।

धर्म के नाम पर जाति-भेद, छुआछूत, बाह्य आडम्बर तथा अन्धविश्वासों का प्रचलन बढ़ गया था। सामान्य जनता धर्म के वास्तविक स्वरूप से दूर होती जा रही थी। ऐसे समय में संतों और भक्त कवियों ने धर्म को सरल, सहज एवं मानवीय रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रेम, भक्ति, समानता तथा मानव-सेवा को सच्चा धर्म बताया।

भक्तिकाल की धार्मिक परिस्थितियों ने भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया तथा हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की।

i) हिन्दू धर्म की स्थिति (Condition of Hindu Religion)

भक्तिकाल में हिन्दू धर्म समाज का प्रमुख धर्म था, किन्तु उसका स्वरूप अत्यधिक कर्मकाण्ड प्रधान हो गया था। यज्ञ, पूजा-पाठ, व्रत, तीर्थयात्रा तथा अनेक धार्मिक अनुष्ठानों को ही धर्म का मुख्य आधार माना जाने लगा था।

ब्राह्मण वर्ग का धार्मिक जीवन पर विशेष प्रभाव था। धार्मिक ग्रन्थों की व्याख्या एवं पूजा-पद्धति पर उनका अधिकार था। सामान्य जनता धार्मिक नियमों का पालन तो करती थी, किन्तु उनके वास्तविक उद्देश्य को समझने में असमर्थ रहती थी।

समय के साथ धर्म में अनेक रूढ़ियाँ एवं अन्धविश्वास भी जुड़ गए। संत कवियों ने इन आडम्बरों का विरोध करते हुए आन्तरिक पवित्रता, सच्चे आचरण तथा ईश्वर-भक्ति को धर्म का वास्तविक स्वरूप बताया।

Ii) इस्लाम धर्म का प्रभाव (Influence of Islam)

मध्यकाल में भारत में इस्लाम का प्रभाव निरन्तर बढ़ता गया। मुस्लिम शासकों के आगमन के साथ इस्लामी संस्कृति, परम्पराएँ तथा धार्मिक विचार भी भारतीय समाज का हिस्सा बने।

इस्लाम ने एकेश्वरवाद, समानता तथा भाईचारे पर बल दिया। इन सिद्धान्तों का प्रभाव भारतीय समाज तथा भक्ति आन्दोलन पर भी पड़ा। अनेक संत कवियों ने हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों धर्मों की श्रेष्ठ शिक्षाओं को स्वीकार किया और धार्मिक समन्वय का संदेश दिया।

कबीर, दादूदयाल तथा गुरु नानक जैसे संतों ने स्पष्ट कहा कि ईश्वर एक है और उसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। उन्होंने धार्मिक कट्टरता का विरोध करते हुए मानवता को सर्वोच्च धर्म माना।

Iii) धार्मिक आडम्बर एवं रूढ़ियाँ (Religious Rituals and Superstitions)

भक्तिकाल में धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के बाह्य आडम्बर प्रचलित थे। लोग पूजा-पाठ, तीर्थयात्रा, व्रत, मूर्तिपूजा तथा कर्मकाण्डों को ही धर्म का सम्पूर्ण स्वरूप समझने लगे थे।

जाति के आधार पर धार्मिक अधिकारों का विभाजन भी किया जाता था। निम्न वर्ग के लोगों को अनेक धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था।

संत कवियों ने इन धार्मिक कुरीतियों का तीव्र विरोध किया। कबीर ने स्पष्ट कहा कि केवल बाहरी पूजा से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती, बल्कि सच्चे मन, निष्कपट भक्ति एवं सदाचार से ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार भक्तिकालीन संत साहित्य धार्मिक सुधार आन्दोलन का भी सशक्त माध्यम बना।

Iv) भक्ति आन्दोलन का उदय (Rise of the Bhakti Movement)

धार्मिक जटिलताओं एवं सामाजिक विषमताओं के कारण भक्ति आन्दोलन का जन्म हुआ। इस आन्दोलन का उद्देश्य धर्म को सरल, सहज एवं जनसामान्य के लिए सुलभ बनाना था।

भक्ति आन्दोलन के संतों ने बताया कि ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विद्यमान है। उसकी प्राप्ति के लिए न तो महंगे यज्ञों की आवश्यकता है और न ही जटिल कर्मकाण्डों की। सच्ची श्रद्धा, प्रेम, सेवा तथा समर्पण ही भक्ति का वास्तविक मार्ग है।

भक्ति आन्दोलन ने समाज में समानता, भाईचारा, प्रेम तथा सहिष्णुता की भावना को सुदृढ़ किया। यही कारण है कि यह आन्दोलन पूरे भारत में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

V) निर्गुण एवं सगुण भक्ति (Nirguna and Saguna Bhakti)

भक्तिकाल में भक्ति की दो प्रमुख धाराएँ विकसित हुईं–

(क) निर्गुण भक्ति

निर्गुण भक्ति के अनुसार ईश्वर निराकार, अजन्मा एवं सर्वव्यापी है। उसकी कोई मूर्ति या निश्चित रूप नहीं है। इस धारा के संतों ने बाह्य आडम्बर, जाति-पाँति तथा कर्मकाण्ड का विरोध किया।

निर्गुण भक्ति की प्रमुख विशेषताएँ

ईश्वर निराकार एवं सर्वव्यापी है।

गुरु का विशेष महत्त्व, तथा जाति-पाँति का विरोध।

आन्तरिक साधना एवं आत्मज्ञान पर बल।

मानव समानता का समर्थन।

(ख) सगुण भक्ति

सगुण भक्ति के अनुसार ईश्वर साकार रूप में अवतार ग्रहण करता है। इस धारा में मुख्य रूप से राम एवं कृष्ण की उपासना की गई।

सगुण भक्तों ने प्रेम, समर्पण, भक्ति एवं नैतिक जीवन को सर्वोच्च माना। तुलसीदास, सूरदास तथा मीराबाई इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

सगुण भक्ति की प्रमुख विशेषताएँ

ईश्वर का साकार स्वरूप।

राम एवं कृष्ण की उपासना।

प्रेम एवं समर्पण का महत्त्व।

भक्ति को मोक्ष का सरल मार्ग मानना।

लोकभाषा में काव्य-रचना।

Vi) सूफी मत का प्रभाव (Influence of Sufism)

भक्तिकाल में सूफी संतों का भी भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। सूफी मत प्रेम, ईश्वर के प्रति समर्पण, मानव सेवा तथा आध्यात्मिक साधना पर बल देता था।

सूफी संतों ने धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने प्रेम को ईश्वर तक पहुँचने का सर्वोत्तम साधन माना। सूफी साहित्य तथा संत साहित्य में अनेक समानताएँ दिखाई देती हैं।

सूफी प्रभाव के कारण भक्तिकालीन साहित्य में प्रेम, करुणा, सहिष्णुता तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना और अधिक सुदृढ़ हुई।

3.3.2 धार्मिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव (Impact of Religious Conditions on Literature)

भक्तिकाल की धार्मिक परिस्थितियों ने हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की। साहित्य का केन्द्र राजदरबारों से हटकर जनसाधारण बन गया। भक्त कवियों ने लोकभाषाओं में रचनाएँ करके धर्म को जन-जन तक पहुँचाया।

साहित्य में प्रेम, भक्ति, समानता, करुणा, नैतिकता तथा मानवता के आदर्शों का विकास हुआ। धार्मिक कट्टरता एवं आडम्बरों का विरोध किया गया तथा समाज को सरल एवं मानवीय धर्म का संदेश दिया गया।

3.3.3 धार्मिक परिस्थितियों का समग्र मूल्यांकन (Overall Evaluation of Religious Conditions)

भक्तिकाल की धार्मिक परिस्थितियाँ अनेक विरोधाभासों से युक्त थीं। एक ओर धर्म में रूढ़ियाँ, कर्मकाण्ड एवं कट्टरता थी, तो दूसरी ओर संतों एवं भक्त कवियों ने धर्म को सरल, उदार एवं मानवतावादी स्वरूप प्रदान किया।

भक्ति आन्दोलन ने समाज में प्रेम, समानता, सहिष्णुता तथा सामाजिक समरसता का वातावरण निर्मित किया। इसी कारण भक्तिकालीन साहित्य केवल धार्मिक साहित्य नहीं, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन का भी सशक्त माध्यम बन गया।

3.3.4 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ (Cultural Conditions)

भक्तिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी एवं उदार परम्परा का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इस काल में भारतीय संस्कृति पर हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों परम्पराओं का प्रभाव दिखाई देता है। विभिन्न धर्मों, भाषाओं, कला-परम्पराओं तथा लोक-संस्कृतियों के परस्पर सम्पर्क से एक मिश्रित संस्कृति का विकास हुआ।

भक्ति आन्दोलन ने सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ किया। संतों एवं भक्त कवियों ने जाति, धर्म और सम्प्रदाय से ऊपर उठकर मानवता, प्रेम तथा भाईचारे का संदेश दिया। परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति अधिक उदार, समन्वयवादी और जनोन्मुख बनी।

i) भारतीय संस्कृति का समन्वयवादी स्वरूप

भक्तिकाल में विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का समन्वय देखने को मिलता है। हिन्दू एवं मुस्लिम समाज के पारस्परिक सम्पर्क से अनेक सांस्कृतिक परम्पराएँ विकसित हुईं।

संत कवियों ने किसी एक धर्म का समर्थन न करके सभी धर्मों की श्रेष्ठ शिक्षाओं को स्वीकार किया। उन्होंने प्रेम, सत्य, दया, करुणा और सेवा को संस्कृति का आधार माना।

ii) लोक संस्कृति का विकास

भक्तिकाल में लोक संस्कृति का विशेष विकास हुआ। लोकगीत, लोककथाएँ, लोकनृत्य, मेले, पर्व-त्योहार तथा लोक-परम्पराएँ जनजीवन का अभिन्न अंग थीं।

भक्त कवियों ने लोकभाषाओं में रचनाएँ करके संस्कृति को जन-जन तक पहुँचाया। उनकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन, लोकविश्वास तथा लोकाचार का सजीव चित्रण मिलता है।

iii) कला एवं संगीत का विकास

भक्तिकाल में संगीत, नृत्य, चित्रकला तथा स्थापत्य कला का उल्लेखनीय विकास हुआ। भजन, कीर्तन, संकीर्तन तथा धार्मिक संगीत जनजीवन का महत्त्वपूर्ण भाग बन गए।

सूरदास के पद, मीराबाई के भजन तथा वैष्णव संकीर्तन ने भारतीय संगीत परम्परा को समृद्ध बनाया। भक्ति संगीत ने ईश्वर-भक्ति को जनसाधारण तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई

Iv) सांस्कृतिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव

भक्तिकालीन संस्कृति का प्रभाव साहित्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। साहित्य में भारतीय संस्कृति, लोकजीवन, नैतिक आदर्श, धार्मिक सहिष्णुता तथा मानवता का सुंदर चित्रण मिलता है।

भक्त कवियों ने लोकभाषाओं को अपनाकर साहित्य को जनसाधारण का साहित्य बनाया। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के आदर्श—प्रेम, सेवा, करुणा, सहिष्णुता तथा समन्वय—स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

v) सांस्कृतिक परिस्थितियों का समग्र मूल्यांकन

भक्तिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियों ने भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की। इस काल में सांस्कृतिक समन्वय, धार्मिक सहिष्णुता तथा लोकजीवन की प्रतिष्ठा ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाया। यही सांस्कृतिक चेतना भक्तिकालीन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

3.3.5 साहित्यिक परिस्थितियाँ (Literary Conditions)

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इस काल में साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं रहा, बल्कि समाज में नैतिकता, मानवता, समानता तथा ईश्वर-भक्ति का प्रसार भी था।

भक्तिकालीन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे संस्कृत के स्थान पर लोकभाषाओं में लिखा गया। इससे साहित्य सीधे जनसाधारण तक पहुँचा। भक्त कवियों ने सरल एवं प्रभावशाली भाषा में अपनी भावनाओं को व्यक्त किया।

i) भाषा का विकास

भक्तिकाल में हिंदी की अनेक लोकभाषाओं का विकास हुआ। अवधी, ब्रजभाषा, मैथिली, राजस्थानी, पंजाबी तथा पूर्वी हिंदी की विभिन्न बोलियों में श्रेष्ठ साहित्य की रचना हुई।

भाषा की प्रमुख विशेषताएँ

सरल एवं सहज भाषा।

लोकभाषाओं का प्रयोग।

भावप्रधान एवं संगीतमय शैली।

मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग।

जनसामान्य के लिए सुबोध भाषा।

ii) साहित्य की प्रमुख धाराएँ

भक्तिकालीन साहित्य की प्रमुख धाराएँ निम्नलिखित हैं–

(क) निर्गुण भक्ति धारा

इस धारा में ईश्वर को निराकार माना गया। कबीर, गुरु नानक, रैदास एवं दादूदयाल इसके प्रमुख कवि हैं।

(ख) सगुण भक्ति धारा

इस धारा में ईश्वर के साकार स्वरूप की उपासना की गई। इसके दो प्रमुख रूप हैं–

रामभक्ति शाखा - तुलसीदास।

कृष्णभक्ति शाखा - सूरदास, मीराबाई, नंददास आदि।

(ग) सूफी प्रेमाख्यान साहित्य

इस धारा में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का चित्रण किया गया।

प्रमुख कवि–

मलिक मोहम्मद जायसी, मंझन, कुतुबन, उस्मान।

iii) साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

भक्तिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

1. ईश्वर-भक्ति की भावना।
2. मानव समानता एवं सामाजिक समरसता।
3. धार्मिक आडम्बरों का विरोध।
4. लोकभाषाओं का प्रयोग।
5. प्रेम एवं करुणा का चित्रण।
6. नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन पर बल।
7. गुरु की महिमा।
8. जनकल्याण की भावना।

iv) साहित्यिक परिस्थितियों का समग्र मूल्यांकन

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग है। इस युग में साहित्य जनसाधारण का साहित्य बना। भाषा, विचार, भाव एवं शैली की दृष्टि से हिंदी साहित्य को नई ऊँचाइयाँ प्राप्त हुईं।

भक्तिकालीन साहित्य ने भारतीय समाज में प्रेम, समानता, मानवता, धार्मिक सहिष्णुता तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना की। यही कारण है कि आज भी भक्तिकालीन साहित्य भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर माना जाता है।

3 .4 अपनी प्रगति जाँचें (Check Your Progress)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का क्या कहा जाता है?

(क) आदिकाल

(ख) स्वर्णयुग

(ग) आधुनिक युग

घ) वैज्ञानिक युग

2. निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख कवि कौन हैं?

(क) सूरदास

(ख) तुलसीदास

(ग) कबीर

(घ) बिहारी

3. भक्तिकाल में सामाजिक सुधार का मुख्य आधार क्या था?

4. भक्तिकालीन साहित्य की दो प्रमुख धाराओं के नाम लिखिए।

5. भक्तिकालीन साहित्य की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

3..5 सारांश (Summary)

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग है। इस काल की राजनीतिक परिस्थितियों में विदेशी शासन, सत्ता संघर्ष तथा प्रशासनिक परिवर्तन प्रमुख थे। सामाजिक जीवन जाति-भेद, ऊँच-नीच तथा सामाजिक विषमताओं से प्रभावित था। धार्मिक क्षेत्र में कर्मकाण्ड एवं रूढ़ियों का विरोध करते हुए भक्ति आन्दोलन का विकास हुआ। सांस्कृतिक जीवन में समन्वय, लोकसंस्कृति तथा कला का विकास हुआ।

इन परिस्थितियों का हिंदी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। भक्त कवियों ने प्रेम, समानता, मानवता, धार्मिक सहिष्णुता तथा नैतिक मूल्यों का संदेश दिया। लोकभाषाओं में रचित साहित्य ने हिंदी को समृद्ध बनाया तथा भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की।

3 .6 मुख्य शब्द (Keywords)

मुख्य शब्द

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग

भक्ति आन्दोलन ईश्वर-भक्ति एवं सामाजिक सुधार का आन्दोलन

निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना

सगुण साकार ईश्वर की उपासना

संत साहित्य संत कवियों द्वारा रचित साहित्य

सूफी इस्लामी रहस्यवादी परम्परा के साधक

लोकभाषा सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा

समन्वय विभिन्न विचारों का मेल

कर्मकाण्ड धार्मिक बाह्य आचार एवं अनुष्ठान

सहिष्णुता दूसरे के विचारों का सम्मान करने की भावना

मानवता सभी मनुष्यों के प्रति प्रेम एवं सम्मान

सामाजिक समरसता समाज में समानता एवं भाईचारे की भावना

3..7 स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self-Assessment Test)

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भक्तिकाल की समय-सीमा लिखिए।

2. निर्गुण भक्ति से क्या अभिप्राय है?

3. सगुण भक्ति के दो प्रमुख रूप कौन-से हैं?

4. सूफी मत की एक विशेषता लिखिए।

5. भक्तिकालीन साहित्य की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

2. भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिए।

3. भक्ति आन्दोलन के उदय के कारण स्पष्ट कीजिए।

4. भक्तिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भक्तिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

2. भक्तिकालीन परिस्थितियों का हिंदी साहित्य पर पड़े प्रभाव का समालोचनात्मक अध्ययन कीजिए।

3. भक्तिकाल की साहित्यिक परिस्थितियों का विस्तृत मूल्यांकन कीजि

3.8 अपनी प्रगति जाँचें – उत्तर संकेत (Answer Hints)

1. (ख) स्वर्णयुग।

2. (ग) कबीर।

3. मानवता, समानता तथा ईश्वर-भक्ति।

4. निर्गुण एवं सगुण भक्ति धारा।

5. लोकभाषा का प्रयोग तथा ईश्वर-भक्ति की भावना।

3.9 संदर्भ ग्रंथ (References / Suggested Readings)

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास।

2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास।

3. डॉ. नगेन्द्र (सम्पा.) – हिंदी साहित्य का इतिहास।

4. डॉ. रामकुमार वर्मा – हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

5. डॉ. बच्चन सिंह – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास।

6. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास।

विषय : हिन्दी अनिवार्य

कोर्स कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या : 4	Vetter : Dr. कमलेश देवी
इकाई 2	4 : संत काव्य की प्रवृत्तियाँ

4 : संत काव्य की प्रवृत्तियाँ

4 .0 Learning Objectives (अधिगम उद्देश्य)

4 .1 Introduction (प्रस्तावना)

4.2 पाठ का मुख्य भाग

4.2.1 संत काव्य : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

.4.2.2 संत काव्य की उत्पत्ति एवं विकास

4.2.3 संत काव्य की प्रमुख प्रवृतियाँ

4 .3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

4.3.1 संत काव्य का साहित्यिक महत्त्व

4.3.2 हिन्दी साहित्य में संत काव्य का योगदान

4.3.3 आधुनिक संदर्भ में संत काव्य की प्रासंगिकता

4..4 अपनी प्रगति जाँचें

4..5 सारांश

4..6 मुख्य शब्द (शब्दार्थ सहित)

4 .7 स्वमूल्यांकन प्रश्न

4..8 उत्तर संकेत

4..9 संदर्भ ग्रंथ

4 .0 L earning Objectives (अधिगम उद्देश्य)

इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त विद्यार्थी–

संत काव्य की अवधारणा, स्वरूप एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।

संत काव्य के उद्भव एवं विकास के कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे।

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकेंगे।

संत कवियों की धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टि का मूल्यांकन कर सकेंगे।

संत काव्य की भाषा, शैली तथा साहित्यिक महत्त्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

आधुनिक संदर्भ में संत काव्य की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

4.1 Introduction (प्रस्तावना)

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में संत काव्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। भक्तिकाल की निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा का प्रतिनिधित्व करने वाला यह साहित्य भारतीय समाज में आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक समरसता तथा मानवीय मूल्यों का सशक्त संवाहक रहा है। संत कवियों ने अपने अनुभवों के आधार पर ऐसी भक्ति का प्रतिपादन किया जो बाह्य

आडम्बरों, कर्मकाण्डों तथा रूढ़ियों से मुक्त होकर मानव के अंतःकरण की पवित्रता पर आधारित थी।

मध्यकालीन भारत का समाज धार्मिक आडम्बरों, जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच तथा सामाजिक विषमताओं से ग्रस्त था। धर्म का स्वरूप कर्मकाण्डप्रधान हो गया था और सामान्य जनता अनेक प्रकार की रूढ़ियों में उलझी हुई थी। ऐसे समय में संत कवियों ने निर्भीक होकर इन कुरीतियों का विरोध किया तथा प्रेम, समानता, सद्भाव, सत्य, करुणा और मानवता का संदेश दिया। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि ईश्वर किसी विशेष धर्म, जाति या सम्प्रदाय का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता का है।

संत कवियों के अनुसार ईश्वर निर्गुण, निराकार तथा सर्वव्यापक है। उसकी प्राप्ति मंदिर, मस्जिद, तीर्थयात्रा, व्रत अथवा बाहरी अनुष्ठानों से नहीं, बल्कि गुरु की कृपा, नाम-स्मरण, आत्मानुभूति तथा निष्कपट भक्ति से होती है। इसलिए संत साहित्य में बाह्याचार की अपेक्षा आन्तरिक साधना और नैतिक जीवन पर विशेष बल दिया गया है।

कबीर, संत रैदास, गुरु नानक, दादूदयाल, मलूकदास, सुन्दरदास तथा अन्य संत कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की। उनकी भाषा सरल, सहज तथा लोकजीवन के निकट थी, जिसके कारण उनका संदेश जन-जन तक पहुँचा। संत साहित्य ने केवल धार्मिक चेतना ही नहीं जगाई, बल्कि सामाजिक सुधार और मानवीय एकता की भावना को भी सुदृढ़ किया।

वर्तमान समय में भी संत काव्य अत्यन्त प्रासंगिक है। जब समाज विभिन्न प्रकार के भेदभाव, हिंसा और असहिष्णुता जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब संत कवियों का प्रेम, समता, सहिष्णुता और मानवता का संदेश पहले से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है।

4.2 Main Body of Text

4.2.1 संत काव्य : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

संत काव्य का अर्थ

'संत' शब्द संस्कृत के 'सत्' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है—सत्य, श्रेष्ठ, पवित्र, सदाचारी तथा ईश्वर का साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति। संत वह है जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया हो, जो मोह-माया से ऊपर उठकर सत्य के मार्ग पर चलता हो तथा अपने जीवन और उपदेशों के माध्यम से समाज का कल्याण करता हो।

ऐसे संतों द्वारा रचित काव्य को संत काव्य कहा जाता है। यह हिन्दी साहित्य की निर्गुण भक्ति धारा की प्रमुख शाखा है। इसमें ईश्वर के निर्गुण एवं निराकार स्वरूप की उपासना, गुरु की महिमा, नाम-स्मरण, मानवता, सामाजिक समानता तथा आध्यात्मिक अनुभवों का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

संत काव्य की परिभाषा

"संत कवियों द्वारा रचित वह काव्य जिसमें निर्गुण ब्रह्म की उपासना, गुरु-भक्ति, नाम-स्मरण, सामाजिक समता, मानवतावाद तथा धार्मिक आडम्बरों के विरोध की भावना व्यक्त हुई हो, संत काव्य कहलाता है।"

संत काव्य का स्वरूप

संत काव्य का स्वरूप अत्यन्त व्यापक एवं बहुआयामी है। यह केवल धार्मिक या आध्यात्मिक साहित्य नहीं है, बल्कि सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना का भी सशक्त माध्यम है। संत कवियों ने अपने व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभवों को सरल एवं जनभाषा में व्यक्त किया, जिससे सामान्य व्यक्ति भी उनके विचारों को सहजता से समझ सका।

संत काव्य में ईश्वर को निर्गुण एवं निराकार माना गया है। इसमें मूर्तिपूजा, जाति-पाँति, छुआछूत, धार्मिक पाखण्ड तथा कर्मकाण्डों का विरोध किया गया है। संत कवियों ने प्रेम, दया, करुणा, सेवा, समानता तथा भाईचारे को सच्चे धर्म का आधार माना है।

इस काव्यधारा की एक प्रमुख विशेषता इसकी लोकधर्मिता है। संत कवियों ने संस्कृत जैसी कठिन भाषा के स्थान पर सधुक्कड़ी, ब्रज, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी तथा अन्य लोकभाषाओं का प्रयोग किया। परिणामस्वरूप उनकी वाणी सीधे जनमानस तक पहुँची और समाज में व्यापक जागरण का माध्यम बनी।

4.2.2 संत काव्य की उत्पत्ति एवं विकास

संत काव्य हिन्दी साहित्य की निर्गुण ज्ञानाश्रयी भक्ति शाखा का प्रतिनिधि साहित्य है। इसका उद्‌भव मध्यकालीन भारतीय समाज की धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में हुआ। उस समय समाज अनेक प्रकार की विसंगतियों, रूढ़ियों और धार्मिक आडम्बरों से घिरा हुआ था। धर्म का स्वरूप कर्मकाण्डप्रधान हो गया था तथा जाति-पाँति और ऊँच-नीच की भावना समाज में गहराई तक व्याप्त थी। सामान्य जनता धर्म के वास्तविक स्वरूप से दूर होकर बाह्याचारों में उलझ गई थी। ऐसी परिस्थितियों में संत कवियों ने सरल, सहज और अनुभव-आधारित भक्ति का मार्ग प्रस्तुत किया।

संत काव्य का विकास किसी एक सम्प्रदाय या दर्शन का परिणाम नहीं था। इसके निर्माण में भारतीय आध्यात्मिक परम्परा की अनेक धाराओं का योगदान रहा। उपनिषदों के अद्‌वैतवाद, बौद्‌ध एवं जैन धर्म की नैतिक शिक्षाओं, नाथ-पंथ और सिद्‌ध सम्प्रदाय की साधना-पद्‌धति,

वैष्णव भक्ति आन्दोलन तथा सूफी मत की प्रेम-भावना का संत साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इन सभी विचारधाराओं का समन्वय संत कवियों की वाणी में मिलता है।

दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन के प्रचार-प्रसार के बाद उत्तर भारत में स्वामी रामानन्द ने भक्ति को जन-जन तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने जाति और वर्ण की सीमाओं को तोड़कर सभी वर्गों को भक्ति का समान अधिकार प्रदान किया। उनके शिष्यों में कबीर, रैदास आदि ने संत परम्परा को नई दिशा दी। बाद में गुरु नानक, दादूदयाल, मलूकदास, सुन्दरदास और अन्य संत कवियों ने इस धारा को और अधिक समृद्‌ध बनाया।

संत काव्य का विकास मुख्यतः पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में हुआ। इस काल में संत कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया तथा प्रेम, समानता, भाईचारे और मानवता का संदेश दिया। उनकी वाणी का उद्‌देश्य केवल आध्यात्मिक ज्ञान देना नहीं था, बल्कि समाज में व्याप्त अन्याय और भेदभाव को समाप्त करना भी था।

संत साहित्य का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह लोकभाषा में रचा गया। संत कवियों ने संस्कृत जैसी कठिन भाषा के स्थान पर सधुक्कड़ी, ब्रजभाषा, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी तथा

अन्य जनभाषाओं का प्रयोग किया। परिणामस्वरूप उनका साहित्य सीधे सामान्य जनता तक पहुँचा और जन-जागरण का प्रभावी माध्यम बना।

संत काव्य केवल हिन्दी साहित्य की धरोहर नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति और मानवतावादी चिंतन का अमूल्य दस्तावेज़ माना जाता है।

संत काव्य के विकास के प्रमुख कारण

1. धार्मिक आडम्बरों और कर्मकाण्डों का बढ़ता प्रभाव।
2. जाति-पाँति एवं सामाजिक विषमता का प्रसार।
3. निर्गुण भक्ति के प्रचार की आवश्यकता।
4. सूफी मत एवं वैदांतिक दर्शन का प्रभाव।
5. लोकभाषाओं का विकास।
6. समाज में समानता, प्रेम और भाईचारे की स्थापना की आवश्यकता।
7. जनसाधारण के लिए सरल एवं सुलभ भक्ति-पद्धति का विकास।

4.2.3 संत काव्य की प्रमुख प्रवृतियाँ

संत काव्य की पहचान उसकी विशिष्ट प्रवृत्तियों से होती है। इन प्रवृत्तियों ने संत साहित्य को अन्य काव्यधाराओं से अलग और विशिष्ट बनाया है। संत कवियों ने अपने जीवनानुभवों, आध्यात्मिक साधना और सामाजिक दृष्टि के आधार पर जिन विचारों को अपने काव्य में व्यक्त किया, वही संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कहलाती हैं।

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

- . निर्गुण ब्रह्म की उपासन
- . गुरु महिमा

- . नाम-स्मरण की महत्ता
- . आडम्बर एवं कर्मकाण्ड का विरोध
- जाति-पाँति एवं ऊँच-नीच का विरोध
- . मानवतावाद एवं विश्वबंधुत्व
- सामाजिक सुधार की भावना
- . रहस्यवाद
- . आत्मानुभूति
- . प्रेम-भावना
- . लोकमंगल की भावना

.

- निर्गुण ब्रह्म की उपासना

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की सबसे प्रमुख और आधारभूत प्रवृत्ति निर्गुण ब्रह्म की उपासना है। संत कवियों ने ईश्वर को निर्गुण, निराकार, अजन्मा, अविनाशी, सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान माना है। उनके अनुसार परमात्मा का कोई निश्चित रूप, रंग, आकार या मूर्ति नहीं है। वह समस्त सृष्टि में समान रूप से विद्यमान है और प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करता है।

संत कवियों ने सगुण भक्ति का विरोध नहीं किया, बल्कि उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ईश्वर का वास्तविक स्वरूप निराकार है। इसलिए उसकी प्राप्ति मूर्तियों, बाह्य पूजा-पद्धतियों या कर्मकाण्डों से नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि, गुरु की कृपा, नाम-स्मरण और सच्ची भक्ति से होती है। निर्गुण भक्ति का मूल उद्देश्य मनुष्य को बाहरी दिखावे से हटाकर आत्मचिंतन और आध्यात्मिक साधना की ओर प्रेरित करना है। संतों ने ईश्वर को किसी एक धर्म, जाति या सम्प्रदाय तक सीमित नहीं माना, बल्कि सम्पूर्ण मानवता का परम सत्य स्वीकार किया।

निर्गुण ब्रह्म की विशेषताएँ

संत कवियों के अनुसार निर्गुण ब्रह्म की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

वह निराकार एवं निर्गुण है।

वह अजन्मा, अविनाशी और अनन्त है।

वह सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान है।

प्रत्येक जीव के हृदय में उसका निवास है।

वह जाति, धर्म, भाषा तथा सम्प्रदाय से परे है।

उसकी प्राप्ति प्रेम, भक्ति, गुरु-ज्ञान और आत्मानुभूति से होती है।

हैं–

मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।

ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।।

इस पद में कबीर स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर किसी विशेष स्थान पर सीमित नहीं है, बल्कि प्रत्येक जीव के भीतर विद्यमान है।

गुरु नानक ने भी 'एक ओंकार' के सिद्धान्त के माध्यम से एक निराकार, सर्वव्यापक परमात्मा की उपासना का संदेश दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि सम्पूर्ण सृष्टि उसी एक परम सत्ता की अभिव्यक्ति है।

- गुरु महिमा

(Glory and Importance of the Guru)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में गुरु महिमा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। संत कवियों के अनुसार गुरु केवल ज्ञान देने वाला शिक्षक नहीं, बल्कि वह आध्यात्मिक पथ का मार्गदर्शक है, जो अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करके आत्मज्ञान का प्रकाश प्रदान करता है। गुरु मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराता है तथा परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग दिखाता है।

इसलिए संत साहित्य में गुरु को ईश्वर के समान, बल्कि कई स्थानों पर ईश्वर से भी श्रेष्ठ माना गया है।

संत कवियों का विश्वास था कि मनुष्य अपने प्रयासों से केवल सीमित ज्ञान प्राप्त कर सकता है, परंतु आत्मज्ञान और परम सत्य का बोध गुरु की कृपा से ही संभव है। गुरु ही साधक को मोह, माया, अहंकार तथा अज्ञान से मुक्त करके सत्य के मार्ग पर अग्रसर करता है। इस कारण गुरु को जीवन का वास्तविक पथ-प्रदर्शक माना गया है।

संत परम्परा में गुरु का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। विशेष रूप से कबीरदास ने गुरु की महिमा का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। उनका प्रसिद्ध दोहा है–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।

बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।

इस दोहे में कबीर कहते हैं कि यदि गुरु और भगवान दोनों सामने खड़े हों तो सबसे पहले गुरु को प्रणाम करना चाहिए, क्योंकि गुरु ही भगवान तक पहुँचने का मार्ग बताता है। यहाँ गुरु को ईश्वर की प्राप्ति का माध्यम माना गया है।

गुरु नानक ने भी गुरु को परम सत्य का स्वरूप माना है। उनके अनुसार गुरु की कृपा के बिना मनुष्य ईश्वर का वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार दादूदयाल और रैदास ने भी गुरु को आत्मज्ञान और मुक्ति का आधार माना है।

- नाम की महिमा

(Importance of the Divine Name)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में नाम-स्मरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। संत कवियों के अनुसार परमात्मा के नाम का सच्चे मन से स्मरण करना ही ईश्वर-प्राप्ति का सबसे सरल, सहज और प्रभावी साधन है। उन्होंने जप, तप, व्रत, तीर्थयात्रा तथा बाह्य कर्मकाण्डों की अपेक्षा ईश्वर के नाम के निरन्तर स्मरण को अधिक महत्त्व दिया है।

संतों का विश्वास था कि जब मनुष्य पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के साथ ईश्वर का स्मरण करता है, तब उसका मन शुद्ध होता है, अहंकार का नाश होता है और आत्मा परम शान्ति का अनुभव करती है। इसलिए संत साहित्य में 'नाम' को केवल एक शब्द नहीं, बल्कि परमात्मा की दिव्य शक्ति का प्रतीक माना गया है।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि संत कवियों के यहाँ 'राम' या 'हरि' किसी विशेष देवता का नाम नहीं, बल्कि निर्गुण ब्रह्म का प्रतीक है। इसलिए नाम-स्मरण का आशय किसी विशेष सम्प्रदाय से नहीं, बल्कि उस परम सत्य के निरन्तर चिन्तन से है।

संत कवियों की दृष्टि में नाम-स्मरण

कबीरदास ने नाम की महिमा का अनेक स्थानों पर वर्णन किया है। उनके अनुसार संसार के सभी सांसारिक साधन नश्वर हैं, किन्तु परमात्मा का नाम अमर है। नाम-स्मरण से मनुष्य मोह-माया के बन्धनों से मुक्त होकर आत्मिक आनन्द की प्राप्ति करता है।

इसी प्रकार गुरु नानक ने अपने उपदेशों में 'नाम जपो, कीरत करो और वंड छको' का संदेश दिया। उनके अनुसार नाम-स्मरण के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है।

स्पष्ट है कि संत काव्य में नाम-स्मरण को आध्यात्मिक जीवन का आधार माना गया है। यह मनुष्य को आत्मशुद्धि, नैतिकता और ईश्वर के निकट ले जाने का सरल एवं सार्वभौमिक मार्ग है। संत कवियों की दृष्टि में सच्चा नाम-स्मरण केवल जिह्वा का उच्चारण नहीं, बल्कि हृदय की गहन श्रद्धा और आत्मानुभूति है।

- आडम्बर एवं कर्मकाण्ड का विरोध

(Opposition to Ritualism and Religious Ostentation)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में धार्मिक आडम्बर एवं कर्मकाण्ड का विरोध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मध्यकालीन भारतीय समाज में धर्म का वास्तविक स्वरूप लुप्त होता जा रहा था। धर्म के नाम पर यज्ञ, व्रत, तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, माला-जप, तिलक, विशेष वेशभूषा तथा अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों को ही मोक्ष का साधन माना जाने लगा था। सामान्य जनता इन बाहरी आडम्बरों में उलझकर धर्म के वास्तविक उद्देश्य से दूर हो गई थी।

संत कवियों ने इस स्थिति का गम्भीरता से अवलोकन किया और स्पष्ट रूप से कहा कि ईश्वर की प्राप्ति बाहरी दिखावे से नहीं, बल्कि मन की पवित्रता, सच्ची भक्ति और आत्मज्ञान से होती है। उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्ड, अंधविश्वास और कर्मकाण्डों का निर्भीक होकर विरोध किया तथा आन्तरिक साधना को सर्वोच्च स्थान दिया।

कबीर का प्रसिद्ध दोहा है–

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।

कर का मनका छोड़ दे, मन का मनका फेर।।

इस दोहे में कबीर स्पष्ट करते हैं कि केवल हाथों से माला फेरने से कुछ नहीं होता। यदि मन के विकार दूर नहीं हुए, तो सारी पूजा व्यर्थ है। वास्तविक साधना मन का परिवर्तन है।

इसी प्रकार कबीर एक अन्य स्थान पर कहते हैं–

कंकर-पाथर जोड़ि के मस्जिद लई बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।

इस कथन में कबीर बाहरी धार्मिक प्रदर्शन पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक है; उसे ऊँची आवाज़ में पुकारने की आवश्यकता नहीं।

संत रैदास ने भी मन की पवित्रता को बाहरी पूजा से अधिक महत्त्व दिया। उनका प्रसिद्ध कथन–

मन चंगा तो कठौती में गंगा।

इसका अर्थ है कि यदि मन निर्मल है तो साधारण जल भी गंगाजल के समान पवित्र है। तीर्थयात्रा से अधिक महत्त्व मन की शुद्धता का है।

गुरु नानक ने भी कर्मकाण्डों की अपेक्षा सत्य, सेवा, ईमानदारी और नाम-स्मरण को श्रेष्ठ बताया। उनके अनुसार धर्म का उद्देश्य मानवता की सेवा है, न कि केवल बाहरी अनुष्ठानों का पालन।

आडम्बर एवं कर्मकाण्ड के विरोध के प्रमुख कारण

संत कवियों ने अनेक कारणों से कर्मकाण्डों का विरोध किया, जिनमें प्रमुख हैं–

1. धर्म के नाम पर पाखण्ड और अंधविश्वास का प्रसार।

2. धार्मिक कर्मकाण्डों के कारण समाज में आर्थिक एवं सामाजिक शोषण।

3. बाहरी पूजा-पद्धतियों के कारण आत्मज्ञान की उपेक्षा।

4. जाति और सम्प्रदाय के आधार पर धार्मिक भेदभाव।

5. धर्म के वास्तविक उद्देश्य–मानव कल्याण–का लोप।

स्पष्ट है कि संत कवियों ने धर्म के बाहरी स्वरूप की अपेक्षा उसके आन्तरिक एवं नैतिक पक्ष को अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सच्ची भक्ति मंदिर, मस्जिद, तीर्थ, व्रत या कर्मकाण्डों में नहीं, बल्कि निर्मल हृदय, सत्य आचरण, मानव-सेवा और ईश्वर के प्रति निष्कपट प्रेम में निहित है। यही कारण है कि संत काव्य आज भी अंधविश्वास और पाखण्ड के विरुद्ध विवेक तथा मानवता का संदेश देता है।

- जाति-पाँति एवं ऊँच-नीच का विरोध

(Opposition to Casteism and Social Discrimination)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की सबसे प्रगतिशील एवं क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों में जाति-पाँति एवं ऊँच-नीच का विरोध प्रमुख है। मध्यकालीन भारतीय समाज जातिगत भेदभाव से अत्यधिक प्रभावित था। समाज अनेक जातियों और उपजातियों में विभाजित था तथा जन्म के आधार पर मनुष्य की श्रेष्ठता अथवा हीनता निर्धारित की जाती थी। निम्न वर्ग के लोगों को शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था। इस प्रकार सामाजिक असमानता और भेदभाव समाज की सबसे बड़ी समस्या बन चुकी थी।

ऐसी परिस्थितियों में संत कवियों ने जाति-व्यवस्था का खुलकर विरोध किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके कर्म, ज्ञान, चरित्र और सदाचार से निर्धारित होती है। ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं। इसलिए किसी भी

व्यक्ति के साथ जाति, धर्म या जन्म के आधार पर भेदभाव करना अन्यायपूर्ण एवं अमानवीय है।

- संत कवियों की दृष्टि में जाति-पाँति का विरोध

सत कबीरदास ने जातिगत अहंकार का तीव्र विरोध किया। उन्होंने समाज को यह संदेश दिया कि किसी मनुष्य का मूल्यांकन उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके ज्ञान और आचरण से होना चाहिए। उनका प्रसिद्ध दोहा है–

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।

मोल करो तलवार का, पड़ा रहने दो म्यान।।

इस दोहे में कबीर ने अत्यन्त सरल उदाहरण के माध्यम से बताया है कि जैसे तलवार का मूल्य होता है, उसकी म्यान का नहीं; उसी प्रकार मनुष्य का मूल्य उसके ज्ञान और गुणों का होता है, जन्म का नहीं।

गुरु नानक ने भी जाति-भेद का विरोध करते हुए मानव-एकता का संदेश दिया। उनके अनुसार सभी मनुष्य एक ही परमात्मा की संतान हैं, इसलिए उनमें किसी प्रकार का भेद करना उचित नहीं है।

जाति-पाँति के विरोध के प्रमुख कारण

संत कवियों द्वारा जाति-व्यवस्था का विरोध निम्नलिखित कारणों से किया गया–

1. समाज में व्याप्त ऊँच-नीच की भावना को समाप्त करना।

2. सभी मनुष्यों को समान अधिकार दिलाना।

3. मानवता और भाईचारे की स्थापना करना।

4. सामाजिक शोषण एवं अन्याय का विरोध करना।

5. धर्म के वास्तविक स्वरूप–समता और प्रेम–की स्थापना करना।

संत कवियों ने जाति-पाँति, छुआछूत और ऊँच-नीच की भावना का दृढ़ता से विरोध करते हुए समानता, मानवता और विश्वबंधुत्व का आदर्श प्रस्तुत किया। उनके विचारों ने समाज में नई

चेतना का संचार किया तथा यह सिद्ध किया कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य उसके कर्म, ज्ञान और चरित्र में निहित है, न कि उसके जन्म या जाति में। यही कारण है कि संत काव्य की यह प्रवृत्ति आज भी सामाजिक न्याय और मानवीय समानता के लिए प्रेरणास्रोत बनी हुई है।

- मानवतावाद एवं विश्वबंधुत्व की भावना

(Humanism and Universal Brotherhood)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में मानवतावाद एवं विश्वबंधुत्व की भावना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। संत कवियों ने मानव को सबसे श्रेष्ठ माना तथा सम्पूर्ण मानव जाति को एक ही परमात्मा की संतान स्वीकार किया। उनके अनुसार मनुष्य की पहचान उसकी जाति, धर्म, भाषा, सम्प्रदाय अथवा सामाजिक स्थिति से नहीं, बल्कि उसके सदाचार, प्रेम, सेवा और मानवता से होती है।

मध्यकालीन समाज में जातिगत भेदभाव, धार्मिक कट्टरता तथा सामाजिक असमानता व्यापक रूप से विद्यमान थी। संत कवियों ने इन संकीर्णताओं का विरोध करते हुए सम्पूर्ण मानव समाज को एक परिवार के रूप में देखने की प्रेरणा दी। उन्होंने प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति, सेवा और परोपकार को मानव जीवन का सर्वोच्च आदर्श माना।

संत कवियों के अनुसार यदि मनुष्य मानवता का पालन करता है, तो वही सच्चा धर्म है। उन्होंने किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय को श्रेष्ठ नहीं माना, बल्कि सभी धर्मों के मूल में प्रेम और सत्य को स्वीकार किया। इस प्रकार संत साहित्य मानवतावादी चेतना का सशक्त प्रतिनिधि बनकर उभरता है।

- संत कवियों की दृष्टि में मानवतावाद

कबीरदास ने मानव-प्रेम को सर्वोच्च मूल्य माना। उनके अनुसार केवल धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने से कोई महान नहीं बनता, बल्कि वास्तविक महानता प्रेम, दया और सद्भाव में निहित है। उनका प्रसिद्ध दोहा है–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

इस दोहे में कबीर ने स्पष्ट किया है कि सच्चा ज्ञान प्रेम और मानवता में निहित है।

गुरु नानक ने भी मानव-सेवा को ईश्वर-सेवा के समान माना। उन्होंने सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखने तथा परस्पर प्रेम और सहयोग का संदेश दिया।

मानवतावाद एवं विश्वबंधुत्व की प्रमुख विशेषताएँ,सम्पूर्ण मानव जाति को एक परिवार मानना।

प्रेम, दया, करुणा और सेवा को सर्वोच्च मूल्य मानना।, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के भेदभाव का विरोध।

सभी मनुष्यों के समान अधिकारों का समर्थन।, विश्व-शान्ति और सामाजिक समरसता की स्थापना।

मानव-सेवा को ईश्वर-सेवा के समान मानना।

- सामाजिक सुधार की भावना

(Spirit of Social Reform)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य केवल भक्ति और आध्यात्मिक अनुभूति का साहित्य नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन और जन-जागरण का भी सशक्त माध्यम है। संत कवियों ने अपने समय की सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक विसंगतियों को निकट से देखा और उनका निर्भीक होकर विरोध किया। उन्होंने समाज को अंधविश्वास, रूढ़ियों, जातिगत भेदभाव, छुआछूत, धार्मिक पाखण्ड तथा नैतिक पतन से मुक्त करने का प्रयास किया। यही कारण है कि सामाजिक सुधार की भावना संत काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति मानी जाती है।

संत कवियों का उद्देश्य केवल ईश्वर-भक्ति का प्रचार करना नहीं था, बल्कि एक ऐसे समाज की स्थापना करना था जहाँ समानता, प्रेम, न्याय, सदाचार तथा मानवता का वातावरण हो। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य मानव का नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास है, न कि केवल कर्मकाण्डों का पालन।

सामाजिक सुधार के प्रमुख आयाम

संत काव्य में सामाजिक सुधार की भावना अनेक रूपों में व्यक्त हुई है–

जाति-पाँति एवं छुआछूत का विरोध।

धार्मिक पाखण्ड एवं अंधविश्वास का विरोध।

स्त्री एवं निम्न वर्ग के प्रति सम्मान की भावना।

मानव-सेवा एवं परोपकार का समर्थन।

नैतिक जीवन एवं सदाचार पर बल।

प्रेम, सहयोग और सामाजिक समरसता की स्थापना।

श्रम की गरिमा एवं ईमानदारी का समर्थन।

- रहस्यवाद

(Mysticism)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में रहस्यवाद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'रहस्यवाद' का सामान्य अर्थ है–परम सत्य या परमात्मा के उस स्वरूप का अनुभव, जिसे केवल तर्क, बुद्धि या इन्द्रियों के माध्यम से पूरी तरह नहीं जाना जा सकता। यह अनुभूति साधना, आत्मचिन्तन, गुरु-कृपा और आध्यात्मिक अनुभव से प्राप्त होती है।

संत कवियों के अनुसार परमात्मा का वास्तविक स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म, अनन्त और अलौकिक है। उसे शब्दों में पूर्णतः व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसलिए उन्होंने अपने आध्यात्मिक अनुभवों को प्रतीकों, संकेतों, रूपकों तथा सांकेतिक भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया। यही संत काव्य के रहस्यवाद का मूल आधार है।

रहस्यवाद में ईश्वर और जीव के बीच किसी बाहरी माध्यम की अपेक्षा प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभव को महत्त्व दिया गया है। संत कवियों का विश्वास था कि जब साधक अपने मन को विकारों से मुक्त कर लेता है, तब उसे अपने भीतर ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

संत कवियों की दृष्टि में रहस्यवाद

कबीरदास के काव्य में रहस्यवाद का अत्यन्त सशक्त स्वरूप मिलता है। उन्होंने अनेक स्थानों पर आत्मा और परमात्मा के मिलन को प्रतीकों एवं रूपकों के माध्यम से व्यक्त किया है। कबीर के अनुसार परमात्मा बाहर नहीं, बल्कि प्रत्येक जीव के भीतर विद्यमान है। इसलिए उसकी खोज बाहरी संसार में नहीं, अपने अंतर्मन में करनी चाहिए।

कबीर कहते हैं–

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।

फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तत्त्व कहै गियानी।।

इस पद में कबीर ने घड़े और जल का उदाहरण देकर आत्मा और परमात्मा की एकता का रहस्य स्पष्ट किया है। जैसे घड़ा टूटने पर उसके भीतर का जल बाहर के जल में मिल जाता है, वैसे ही आत्मा अंततः परमात्मा में लीन हो जाती है।

गुरु नानक ने भी ईश्वर को सर्वव्यापक और सर्वत्र विद्यमान माना। उनके अनुसार मन की निर्मलता और गुरु की कृपा से ही उस परम सत्य का अनुभव संभव है।

दादूदयाल तथा सुन्दरदास के काव्य में भी रहस्यवादी भावनाओं का सुंदर चित्रण मिलता है। उन्होंने आत्मा की आध्यात्मिक यात्रा और परमात्मा से उसके मिलन को अत्यन्त मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

रहस्यवाद संत काव्य की आत्मा है। इसके माध्यम से संत कवियों ने यह स्पष्ट किया कि परमात्मा का वास्तविक अनुभव बाहरी अनुष्ठानों से नहीं, बल्कि आत्मचिन्तन, गुरु-कृपा, प्रेम और आध्यात्मिक साधना से प्राप्त होता है। संत काव्य का रहस्यवाद आज भी मनुष्य को आत्मिक शान्ति, आध्यात्मिक विकास और जीवन के गहन सत्य को समझने की प्रेरणा देता है।

- आत्मानुभूति

(Self-Realization / Spiritual Experience)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में आत्मानुभूति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आत्मानुभूति का अर्थ है—स्वयं के वास्तविक स्वरूप का अनुभव करना तथा आत्मा और परमात्मा के संबंध का प्रत्यक्ष बोध प्राप्त करना। संत कवियों का मानना था कि ईश्वर का सच्चा ज्ञान केवल पुस्तकों, तर्क-वितर्क या कर्मकाण्डों से प्राप्त नहीं हो सकता, बल्कि इसके लिए व्यक्तिगत साधना, आत्मचिन्तन और आध्यात्मिक अनुभव आवश्यक है।

संत कवियों ने अपने काव्य में वही लिखा जो उन्होंने स्वयं अनुभव किया। इसलिए उनके काव्य में कृत्रिमता नहीं, बल्कि जीवन की सच्चाई और आध्यात्मिक अनुभूति की गहराई दिखाई देती है। उनके लिए आत्मानुभूति केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव थी।

संत कवियों की दृष्टि में आत्मानुभूति

कबीरदास ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि परम सत्य का ज्ञान केवल अनुभव से प्राप्त होता है। उन्होंने कहा कि केवल शास्त्र पढ़ने या दूसरों के कथन पर विश्वास करने से आत्मज्ञान संभव नहीं है। जब तक मनुष्य स्वयं साधना नहीं करता, तब तक वह ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकता।

कबीर का प्रसिद्ध दोहा है—

मैं कहता हूँ आँखिन देखी,

तू कहता कागद की लेखी।

इस कथन में कबीर स्पष्ट करते हैं कि उनका ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित है, जबकि केवल पुस्तकीय ज्ञान अधूरा होता है।

संत रैदास ने भी आत्मानुभूति को ईश्वर-प्राप्ति का आधार माना। उनके अनुसार निर्मल हृदय और निष्कपट भक्ति से साधक अपने भीतर ही परमात्मा का अनुभव कर सकता है।

गुरु नानक ने भी आत्मज्ञान को आध्यात्मिक जीवन का मूल आधार माना। उनके अनुसार गुरु की कृपा, नाम-स्मरण और सत्याचरण के माध्यम से आत्मा परमात्मा के निकट पहुँचती है।

- प्रेम-भावना

(Spirit of Divine and Human Love)

अर्थ एवं अवधारणा

प्रेम संत काव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं मूलभूत प्रवृत्तियों में से एक है। संत कवियों के अनुसार प्रेम ही वह शक्ति है जो मनुष्य को परमात्मा के निकट ले जाती है तथा सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्र में बाँधती है। संत साहित्य में प्रेम केवल स्त्री-पुरुष के सांसारिक आकर्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आध्यात्मिक, मानवीय और सार्वभौमिक प्रेम का प्रतीक है।

संत कवियों का विश्वास था कि जहाँ प्रेम है, वहीं ईश्वर का निवास है। बिना प्रेम के भक्ति, ज्ञान, तप, व्रत तथा सभी धार्मिक अनुष्ठान निष्फल हैं। इसलिए उन्होंने प्रेम को धर्म, भक्ति और मानव जीवन का सर्वोच्च मूल्य माना है।

संत काव्य में प्रेम का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। इसमें ईश्वर के प्रति प्रेम, गुरु के प्रति श्रद्धा, मानव के प्रति करुणा, जीवमात्र के प्रति दया तथा सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति आत्मीयता का भाव समाहित है। यही प्रेम मनुष्य के अहंकार, द्वेष और संकीर्णता को समाप्त करके उसे उदार एवं संवेदनशील बनाता है।

कबीर कहते हैं–

प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय।

राजा प्रजा जेहि रुचै, शीश दे ले जाय।।

इस दोहे में कबीर स्पष्ट करते हैं कि प्रेम न खेतों में उगता है और न ही बाजार में खरीदा जा सकता है। इसे प्राप्त करने के लिए पूर्ण समर्पण और त्याग आवश्यक है।

एक अन्य स्थान पर कबीर कहते हैं–

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

इसका आशय यह है कि प्रेम का वास्तविक ज्ञान ही मनुष्य को सच्चा ज्ञानी बनाता है।

गुरु नानक ने प्रेम को ईश्वर तक पहुँचने का श्रेष्ठ मार्ग माना। उन्होंने प्रेम, सेवा और सत्य पर आधारित जीवन को ही सच्ची भक्ति बताया।

प्रेम के माध्यम से आत्मा और परमात्मा का आध्यात्मिक मिलन सम्भव होता है।

प्रेम-भावना संत काव्य की आत्मा है। संत कवियों ने प्रेम को भक्ति, ज्ञान और मानवता का सर्वोच्च आधार माना है। उनके अनुसार प्रेम के बिना न तो ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है और न ही समाज में शान्ति एवं समरसता की स्थापना। इसलिए संत काव्य का प्रेम केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक चेतना का भी आधार है।

- लोकमंगल की भावना

(Spirit of Public Welfare)

अर्थ एवं अवधारणा

संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में लोकमंगल की भावना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'लोकमंगल' का अर्थ है—सम्पूर्ण समाज के कल्याण, सुख, शान्ति तथा नैतिक उन्नति की भावना। संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से केवल व्यक्तिगत मोक्ष या ईश्वर-प्राप्ति का संदेश नहीं दिया, बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण को अपना उद्देश्य बनाया। उनके विचारों में व्यक्ति और समाज दोनों का समान महत्त्व है।

संत कवियों का विश्वास था कि वास्तविक धर्म वही है जो मानव-हित, समाज-सेवा, परोपकार, दया, करुणा और प्रेम का मार्ग प्रशस्त करे। यदि किसी धार्मिक आचरण से समाज में भेदभाव, घृणा या अन्याय उत्पन्न होता है, तो वह धर्म नहीं, बल्कि अधर्म है। इसलिए संतों ने अपने उपदेशों में सदैव लोककल्याण को सर्वोच्च स्थान दिया।

संत कवियों की दृष्टि में लोकमंगल

कबीरदास ने अपने काव्य के माध्यम से समाज में फैली धार्मिक रूढ़ियों, जातिगत भेदभाव, अंधविश्वास तथा पाखण्ड का विरोध किया। उनका उद्देश्य केवल आलोचना करना नहीं था,

बल्कि समाज को सही दिशा प्रदान करना था। उन्होंने सत्य, प्रेम, समानता और सदाचार पर आधारित जीवन का संदेश देकर समाज के नैतिक उत्थान का प्रयास किया।

गुरु नानक ने मानव-सेवा को ईश्वर-सेवा के समान माना। उन्होंने ईमानदारी से श्रम करने, दूसरों के साथ अपनी कमाई बाँटने तथा सभी मनुष्यों के साथ समान व्यवहार करने का उपदेश दिया। उनके विचारों में व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ सामाजिक कल्याण की भावना भी निहित है।

दादूदयाल और मलूकदास जैसे संत कवियों ने भी प्रेम, सहिष्णुता, सेवा और सद्भाव के माध्यम से समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया।

लोकमंगल की प्रमुख विशेषताएँ

लोकमंगल की भावना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

समाज के समग्र कल्याण पर बल।, मानव-सेवा को सर्वोच्च धर्म मानना।

दया, करुणा, परोपकार एवं सहयोग की भावना।, सामाजिक समरसता एवं भाईचारे का समर्थन।

अन्याय, शोषण एवं भेदभाव का विरोध।, नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर बल।

सभी वर्गों के कल्याण की भावना।

लोकमंगल की भावना संत काव्य की आधारभूत विशेषताओं में से एक है। संत कवियों ने मानव-सेवा, परोपकार, समानता, नैतिकता और सामाजिक समरसता को धर्म का वास्तविक स्वरूप माना। उनका उद्देश्य ऐसा समाज स्थापित करना था जहाँ प्रत्येक व्यक्ति सम्मान, प्रेम और न्याय के साथ जीवन व्यतीत कर सके। यही कारण है कि संत काव्य आज भी लोककल्याण और मानवीय मूल्यों की प्रेरणा का महत्त्वपूर्ण स्रोत बना हुआ है।

4.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

4.3.1 संत काव्य का साहित्यिक महत्त्व

(Literary Importance of Sant Poetry)

संत काव्य हिन्दी साहित्य की अत्यन्त समृद्ध एवं प्रभावशाली काव्यधारा है। यह केवल भक्ति का साहित्य नहीं, बल्कि भारतीय समाज, संस्कृति, दर्शन और मानव जीवन का सजीव दस्तावेज़ भी है। संत कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से धार्मिक आडम्बर, सामाजिक विषमता, जाति-पाँति, अंधविश्वास तथा नैतिक पतन का विरोध करते हुए प्रेम, समानता, मानवता और आध्यात्मिक चेतना का संदेश दिया। इस प्रकार संत काव्य ने हिन्दी साहित्य को नई दिशा, नया दृष्टिकोण तथा नई चेतना प्रदान की।

संत काव्य का साहित्यिक महत्त्व निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

।). हिन्दी साहित्य को नई दिशा प्रदान करना

संत काव्य ने हिन्दी साहित्य को राजदरबारों और अभिजात वर्ग की सीमाओं से बाहर निकालकर जनसामान्य से जोड़ा। संत कवियों ने लोकभाषाओं में रचना करके साहित्य को समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाया। इससे हिन्दी साहित्य का क्षेत्र व्यापक हुआ तथा उसकी जनस्वीकार्यता बढ़ी।

।i जनभाषा का विकास

संत कवियों ने संस्कृत जैसी कठिन भाषा के स्थान पर सधुक्कड़ी, ब्रजभाषा, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी तथा अन्य लोकभाषाओं का प्रयोग किया। इससे हिन्दी भाषा के विकास को नई गति मिली। उनकी भाषा सरल, सहज, प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली है, जिसके कारण उनका साहित्य आज भी जनमानस में लोकप्रिय है।

।ii मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास

संत काव्य का मूल आधार मानवता है। संत कवियों ने जाति, धर्म, सम्प्रदाय तथा वर्गगत भेदभाव का विरोध करते हुए सभी मनुष्यों की समानता पर बल दिया। उन्होंने प्रेम, करुणा, दया, सेवा और सहिष्णुता जैसे मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित किया। इस दृष्टि से संत साहित्य भारतीय मानवतावादी चिन्तन की अमूल्य धरोहर है।

।v . सामाजिक चेतना का विकास

संत कवियों ने समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का विरोध किया। उन्होंने धार्मिक पाखण्ड, जातिवाद, छुआछूत तथा सामाजिक अन्याय के विरुद्ध जनमत तैयार किया। उनके काव्य ने समाज में सुधारवादी चेतना का विकास किया तथा सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया।

v भक्ति साहित्य का समृद्ध विकास

संत काव्य ने निर्गुण भक्ति परम्परा को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। संत कवियों ने ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान माना और नाम-स्मरण, गुरु-भक्ति तथा आत्मानुभूति को ईश्वर-प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन बताया। इससे भक्ति साहित्य को नया दार्शनिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त हुआ।

vi. दार्शनिक एवं आध्यात्मिक योगदान

संत काव्य में वेदान्त, योग, सूफी दर्शन तथा भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं का सुंदर समन्वय मिलता है। आत्मा, परमात्मा, माया, गुरु, प्रेम तथा मोक्ष जैसे गम्भीर विषयों को संत कवियों ने अत्यन्त सरल एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। इससे उनका साहित्य दार्शनिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया।

यद्यपि संत कवियों का उद्देश्य काव्य-सौन्दर्य का प्रदर्शन नहीं था, फिर भी उनके काव्य में भाषा, शैली, प्रतीक, रूपक, व्यंग्य तथा लोकप्रचलित बिम्बों का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग मिलता है। साखी, सबद, पद और रमैनी जैसे काव्य-रूपों ने हिन्दी साहित्य को नई अभिव्यक्ति प्रदान की।

4.3.2 हिन्दी साहित्य में संत काव्य का योगदान

(Contribution of Sant Poetry to Hindi Literature)

हिन्दी साहित्य के विकास में संत काव्य का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अविस्मरणीय है। संत कवियों ने केवल भक्ति का प्रचार नहीं किया, बल्कि हिन्दी भाषा, साहित्य, समाज, संस्कृति तथा भारतीय चिंतन को नई दिशा प्रदान की। संत साहित्य ने मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को जनजीवन से जोड़कर उसे व्यापक स्वरूप प्रदान किया। इसके माध्यम से

साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन न रहकर समाज-सुधार, नैतिक जागरण और आध्यात्मिक उन्नति भी बन गया।

संत काव्य का योगदान निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

हिन्दी भाषा के विकास में योगदान

संत कवियों ने संस्कृत जैसी कठिन भाषा के स्थान पर जनसामान्य की बोलचाल की भाषा को अपनाया। उन्होंने सधुक्कड़ी, ब्रजभाषा, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी तथा अन्य लोकभाषाओं में रचनाएँ लिखीं। इससे हिन्दी भाषा का विकास हुआ तथा वह जनसंपर्क की सशक्त भाषा बन सकी।

संतों की भाषा सरल, सहज और संप्रेषणीय थी। इसी कारण उनका साहित्य शिक्षित और अशिक्षित–दोनों वर्गों द्वारा समान रूप से समझा गया। यह हिन्दी भाषा के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

निर्गुण भक्ति परम्परा को सुदृढ़ करना

संत कवियों ने निर्गुण भक्ति को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उन्होंने ईश्वर को निराकार, अजन्मा, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान माना। ईश्वर-प्राप्ति के लिए उन्होंने नाम-स्मरण, गुरु-भक्ति, आत्मानुभूति तथा निष्काम प्रेम को आवश्यक बताया।

इस प्रकार संत साहित्य ने भारतीय भक्ति आन्दोलन को नया दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आधार प्रदान किया।

सामाजिक सुधार में योगदान

संत कवियों ने समाज में फैली अनेक कुरीतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, जाति-पाँति, छुआछूत तथा धार्मिक पाखण्ड का निर्भीक होकर विरोध किया। उन्होंने सभी मनुष्यों को समान मानते हुए सामाजिक समरसता, भाईचारे और मानवता का संदेश दिया।

उनके विचारों ने समाज में नई चेतना उत्पन्न की तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन को प्रेरणा प्रदान की।

मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास

संत साहित्य का सबसे बड़ा योगदान मानवता की स्थापना है। संत कवियों ने मनुष्य को उसके जन्म, जाति या धर्म के आधार पर नहीं, बल्कि उसके कर्म, चरित्र और सदाचार के आधार पर सम्मान देने की शिक्षा दी।

उन्होंने प्रेम, दया, करुणा, सेवा, सहिष्णुता और परोपकार जैसे मानवीय मूल्यों को जीवन का आधार माना। इससे हिन्दी साहित्य में मानवतावादी चेतना का विकास हुआ।

समग्र मूल्यांकन

यदि हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि संत काव्य ने साहित्य को भाषा, विचार, विषय-वस्तु, शैली, दर्शन तथा सामाजिक चेतना—सभी स्तरों पर समृद्ध किया। संत कवियों ने यह सिद्ध किया कि साहित्य का सर्वोच्च उद्देश्य मानव-कल्याण, सामाजिक जागरण तथा नैतिक विकास है।

उनका योगदान केवल मध्यकाल तक सीमित नहीं है, बल्कि आज भी हिन्दी साहित्य, भारतीय संस्कृति तथा सामाजिक जीवन को समान रूप से प्रभावित करता है।

हिन्दी साहित्य के विकास में संत काव्य का योगदान बहुआयामी एवं अमूल्य है। इसने हिन्दी भाषा को समृद्ध किया, निर्गुण भक्ति को प्रतिष्ठित किया, समाज-सुधार की चेतना जगाई, मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित किया तथा साहित्य को जनसामान्य से जोड़ा। इसी कारण संत साहित्य हिन्दी साहित्य की सबसे प्रभावशाली और कालजयी काव्यधाराओं में से एक माना जाता है।

4.3.3 आधुनिक संदर्भ में संत काव्य की प्रासंगिकता

अर्थ एवं अवधारणा

यद्यपि संत काव्य की रचना मध्यकाल में हुई थी, तथापि उसके विचार, आदर्श और जीवन-मूल्य आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। संत कवियों ने जिन सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और मानवीय समस्याओं की ओर संकेत किया था, उनमें से अनेक समस्याएँ आज भी

विभिन्न रूपों में समाज में विद्यमान हैं। इसलिए संत काव्य केवल ऐतिहासिक या साहित्यिक धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान समाज के लिए भी एक मार्गदर्शक साहित्य है।

आज का समाज जातिवाद, सांप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता, हिंसा, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन, उपभोक्तावाद, स्वार्थ तथा सामाजिक असमानता जैसी अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है। इन परिस्थितियों में संत कवियों के विचार समाज को नई दिशा देने में सक्षम हैं। उनका साहित्य मानवता, प्रेम, समानता, सहिष्णुता और नैतिक जीवन का संदेश देता है।

धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव की दृष्टि से प्रासंगिकता

वर्तमान समय में अनेक स्थानों पर धार्मिक असहिष्णुता तथा सांप्रदायिक तनाव देखने को मिलता है। संत कवियों ने सभी धर्मों का सम्मान करते हुए प्रेम, सहिष्णुता तथा भाईचारे का संदेश दिया।

नैतिक मूल्यों की स्थापना में प्रासंगिकता

आधुनिक जीवन में भौतिक सुख-सुविधाओं की वृद्धि के साथ-साथ नैतिक मूल्यों का ह्रास भी देखने को मिलता है। स्वार्थ, लोभ, भ्रष्टाचार तथा अनैतिक आचरण समाज की प्रमुख समस्याएँ बन गए हैं।

मानवता एवं विश्वबंधुत्व की दृष्टि से प्रासंगिकता

आज का विश्व अनेक प्रकार के संघर्षों, हिंसा, युद्ध, आतंकवाद तथा सामाजिक तनाव से प्रभावित है। ऐसी स्थिति में संत काव्य का मानवतावादी दृष्टिकोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

पर्यावरण एवं जीवन-दृष्टि की दृष्टि से प्रासंगिकता

यद्यपि संत कवियों ने आधुनिक अर्थों में पर्यावरण संरक्षण पर चर्चा नहीं की, फिर भी उनकी जीवन-दृष्टि प्रकृति, सादगी, संतुलन और संयम पर आधारित है। उन्होंने लोभ, संग्रह-वृत्ति तथा अनावश्यक भोग-विलास का विरोध किया।

शिक्षा एवं व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से प्रासंगिकता

संत साहित्य केवल धार्मिक शिक्षा नहीं देता, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण की भी प्रेरणा देता है। यह मनुष्य में आत्मविश्वास, आत्मचिन्तन, विवेक, सहिष्णुता, विनम्रता तथा नैतिकता का विकास करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 भी मूल्यपरक शिक्षा, नैतिक विकास तथा भारतीय ज्ञान-परम्परा पर बल देती है। इस दृष्टि से संत साहित्य विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

4.4 प्रगति जाँचें (Check Your Progress)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. संत काव्य मुख्यतः _____ भक्ति धारा से संबंधित है।

2. कबीरदास ने _____ एवं कर्मकाण्ड का विरोध किया।

3. संत कवियों ने _____ को ईश्वर-प्राप्ति का सरल साधन माना।

4. संत साहित्य में _____ को सर्वोच्च मानवीय मूल्य माना गया है।

5. गुरु नानक ने _____ और मानव-सेवा पर विशेष बल दिया।

सही विकल्प चुनिए–

1. संत काव्य की प्रमुख भाषा कौन-सी मानी जाती है?

(क) संस्कृत

(ख) सधुक्कड़ी

(ग) पाली

(घ) प्राकृत

2. निम्नलिखित में से कौन संत कवि हैं?

(क) बिहारी

(ख) केशवदास

(ग) कबीरदास

(घ) भूषण

3. संत कवियों ने किसका विरोध किया?

(क) मानवता

(ख) प्रेम

(ग) जाति-पाँति एवं धार्मिक आडम्बर

(घ) सदाचार

4. 'बेगमपुरा' की कल्पना किस संत कवि ने की?

(क) कबीर

(ख) रैदास

(ग) दादूदयाल

(घ) मलूकदास

5. संत काव्य का मूल उद्देश्य क्या है?

(क) राजाओं की प्रशंसा

(ख) मनोरंजन

(ग) भक्ति, मानवता एवं समाज-सुधार

(घ) युद्ध-वर्णन

4. 5 सारांश

इस अध्याय में संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तृत अध्ययन किया गया। संत काव्य निर्गुण भक्ति धारा का प्रतिनिधि साहित्य है, जिसमें ईश्वर के निराकार स्वरूप, गुरु-महिमा, नाम-स्मरण, प्रेम, आत्मानुभूति तथा रहस्यवाद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संत कवियों ने धार्मिक आडम्बर, कर्मकाण्ड, जाति-पाँति, ऊँच-नीच, अंधविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों का विरोध करते हुए मानवता, समानता, विश्वबंधुत्व, लोकमंगल तथा सामाजिक सुधार का संदेश दिया। उनकी वाणी में समन्वयवादी दृष्टिकोण, नैतिक चेतना तथा आध्यात्मिक अनुभूति का सुंदर समन्वय मिलता है।

संत काव्य की भाषा सरल, सहज, जनसुलभ एवं प्रभावशाली है। साखी, सबद, पद और रमैनी इसके प्रमुख काव्य-रूप हैं। प्रतीकात्मकता तथा उलटबाँसी इसकी विशिष्ट शैलीगत विशेषताएँ हैं।

हिन्दी साहित्य के विकास में संत काव्य का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसने भाषा, साहित्य, समाज तथा संस्कृति को नई दिशा प्रदान की। आधुनिक युग में भी संत साहित्य प्रेम, समानता, सामाजिक न्याय, धार्मिक सहिष्णुता तथा नैतिक जीवन की प्रेरणा देकर अपनी निरन्तर प्रासंगिकता सिद्ध करता है।

4..6 मुख्य शब्द (अर्थ सहित)

मुख्य शब्द	अर्थ
संत काव्य	संत कवियों द्वारा रचित निर्गुण भक्ति प्रधान साहित्य
निर्गुण ब्रह्म	निराकार, निर्विकार एवं सर्वव्यापक ईश्वर
नाम-स्मरण	ईश्वर के नाम का श्रद्धापूर्वक निरन्तर स्मरण
गुरु	आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करने वाला मार्गदर्शक
रहस्यवाद	आत्मा एवं परमात्मा के गूढ़ आध्यात्मिक अनुभव का सिद्धान्त
आत्मानुभूति	स्वयं के आध्यात्मिक स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव
लोकमंगल	समाज के समग्र कल्याण की भावना

समन्वयवाद विभिन्न मतों एवं विचारों में सामंजस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति

सधुक्कड़ी संत कवियों द्वारा प्रयुक्त मिश्रित लोकभाषा

साखी उपदेशात्मक मुक्तक काव्य-रूप

सबद गेय भक्ति रचना

उलटबाँसी विरोधाभासी प्रतीत होने वाली सांकेतिक अभिव्यक्ति

4.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

अतिलघुत्तरीय प्रश्न

1. संत काव्य से क्या अभिप्राय है?
2. निर्गुण भक्ति किसे कहते हैं?
3. संत काव्य की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
4. कबीरदास ने किसका विरोध किया?
5. संत साहित्य में गुरु का क्या महत्त्व है?

लघुत्तरीय प्रश्न

1. संत काव्य में नाम-स्मरण की महत्ता स्पष्ट कीजिए।
2. संत कवियों की मानवतावादी दृष्टि का वर्णन कीजिए।
3. संत काव्य में रहस्यवाद की विवेचना कीजिए ।
4. संत काव्य की भाषा एवं शैली की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
5. संत काव्य में लोकमंगल की भावना का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
2. संत काव्य में सामाजिक सुधार की भावना का मूल्यांकन कीजिए।
3. हिन्दी साहित्य में संत काव्य के योगदान का समालोचनात्मक अध्ययन कीजिए।
4. आधुनिक संदर्भ में संत काव्य की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
5 संत काव्य के भाषा, शैली तथा काव्य-रूपों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

4.8 प्रगति जाँचें के उत्तर

रिक्त स्थान

1. निर्गुण
2. आडम्बर
3. नाम-स्मरण
4. प्रेम
5. नाम-स्मरण

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. (ख) सधुक्कड़ी
2. (ग) कबीरदास
3. (ग) जाति-पाँति एवं धार्मिक आडम्बर
4. (ख) रैदास

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. डॉ. नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास।
3. डॉ. बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास।
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर।
5. हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास।
6. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास।
7. डॉ. रामकुमार वर्मा – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
8. एन.सी.ई.आर.टी. एवं यू.जी.सी. द्वारा अनुशंसित हिन्दी साहित्य संबंधी ग्रंथ।

कोर्स कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या 5	Vetter : Dr. कमलेश देवी
इकाई 2	कबीर का साहित्यिक परिचय एवं कबीर के दोहे

पाठ-5 : कबीर का साहित्यिक परिचय एवं कबीर के दोहे

5.0 अधिगम उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 पाठ का मुख्य भाग
5.2.1 कबीर का जीवन एवं व्यक्तित्व
5.2.2 कबीर का साहित्यिक परिचय
5.2.3 कबीर की काव्य-दृष्टि
5.2.4 कबीर की भाषा एवं शैली
5.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग
5.3.1 कबीर के दोहों का परिचय
5.3.2 दोहों में सामाजिक चेतना
5.3.3 दोहों में धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि
5.3.4 दोहों में गुरु-महिमा
5.3.5 दोहों में आडंबर-विरोध
5.3.6 दोहों में मानवतावादी दृष्टि
5.3.7 कबीर के दोहों की भाषा-शैली एवं काव्य-सौंदर्य
5.3.8 कबीर के दोहों की वर्तमान प्रासंगिकता
5.4 अपनी प्रगति जाँचें
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्द एवं अर्थ
5.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
5.8 अपनी प्रगति जाँचें के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 अधिगम उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी–

1. कबीर के जीवन और व्यक्तित्व का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
2. कबीर के साहित्यिक व्यक्तित्व और काव्य-विशेषताओं को समझ सकेंगे।
3. कबीर की निर्गुण भक्ति और संत परम्परा को समझ सकेंगे।
4. कबीर की सामाजिक, धार्मिक एवं मानवीय दृष्टि का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
5. कबीर की भाषा एवं काव्य-शैली की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
6. कबीर के दोहों की विषय-वस्तु और भावभूमि को स्पष्ट कर सकेंगे।
7. कबीर के दोहों में व्यक्त गुरु-महिमा, प्रेम, आत्मज्ञान और मानवतावाद को समझ सकेंगे।
8. कबीर के आडंबर-विरोध और सामाजिक चेतना का मूल्यांकन कर सकेंगे।
9. कबीर के दोहों की भाषा, शैली और काव्य-सौंदर्य का अध्ययन कर सकेंगे।
10. कबीर के विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज और साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इस आंदोलन ने धर्म और आध्यात्मिकता को केवल कर्मकांड तक सीमित न रखकर उसे मनुष्य के व्यक्तिगत अनुभव, प्रेम, नैतिकता और आंतरिक चेतना से जोड़ा। संत काव्यधारा इसी व्यापक भक्ति चेतना की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। इस धारा के प्रमुख कवियों में कबीर का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

कबीर ऐसे संत कवि हैं जिन्होंने अपने समय की धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक भेदभाव और बाहरी आडंबरों पर तीखा प्रहार किया। उन्होंने मनुष्य को अपने भीतर सत्य की खोज करने,

प्रेम और मानवता को अपनाने तथा अंधानुकरण से बचने की प्रेरणा दी। उनकी वाणी में निर्भीकता, स्पष्टता और जीवन का गहरा अनुभव दिखाई देता है।

कबीर का साहित्य किसी एक वर्ग या सम्प्रदाय तक सीमित नहीं है। उन्होंने जाति, पंथ और धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर मनुष्य को महत्त्व दिया। उनका मानना था कि ईश्वर की प्राप्ति बाहरी दिखावे से नहीं, बल्कि शुद्ध मन, प्रेम और आत्मबोध से होती है।

कबीर की रचनाओं में साखी, सबद और रमैनी प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके दोहे विशेष रूप से लोकप्रिय हुए हैं। छोटे आकार में कही गई इन पंक्तियों में जीवन का गहरा अनुभव, सामाजिक चेतना, आध्यात्मिक दृष्टि और व्यावहारिक ज्ञान समाहित है।

इस पाठ में पहले कबीर के जीवन एवं साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय दिया जाएगा। इसके बाद उनके दोहों के माध्यम से उनके विचारों, सामाजिक चेतना, आध्यात्मिक दृष्टि, गुरु-महिमा, आडंबर-विरोध, मानवतावाद तथा भाषा-शैली का अध्ययन किया जाएगा।

5.2 पाठ का मुख्य भाग

5.2.1 कबीर का जीवन एवं व्यक्तित्व

कबीर के जीवन के सम्बन्ध में अनेक किंवदंतियाँ और जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। उनके जन्मस्थान, जन्म-वर्ष और जीवन की अनेक घटनाओं के विषय में विद्वानों में पूर्ण एकमत नहीं है। इसलिए कबीर के जीवन का अध्ययन करते समय प्रमाणित साहित्यिक परम्परा और उनके काव्य में व्यक्त विचारों को अधिक महत्त्व देना उचित है।

कबीर का सम्बन्ध काशी से माना जाता है। लोकपरम्परा में उन्हें जुलाहा परिवार से सम्बद्ध बताया गया है। उन्होंने सामान्य जनजीवन के निकट रहकर जीवन को देखा और अपने अनुभवों को सहज भाषा में व्यक्त किया।

कबीर पर संत परम्परा और गुरु-परम्परा का प्रभाव माना जाता है। उनकी साधना में बाहरी कर्मकांड की अपेक्षा आंतरिक अनुभव को महत्त्व प्राप्त है। वे ईश्वर को किसी एक स्थान या रूप में सीमित नहीं करते। उनके लिए परम सत्य मनुष्य के भीतर विद्यमान है।

कबीर का व्यक्तित्व अनेक गुणों से सम्पन्न था–

- निर्भीकता
- स्पष्टवादिता
- सामाजिक चेतना
- आध्यात्मिक दृष्टि
- मानवतावादी भावना
- रूढ़ि-विरोध
- आत्मविश्वास
- अनुभव-प्रधान दृष्टिकोण

उन्होंने अपने समय की विसंगतियों पर खुलकर प्रश्न उठाए। उनका उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष का विरोध करना नहीं, बल्कि मनुष्य को अंधविश्वास और बाहरी आडंबर से मुक्त करना था।

5.2.2 कबीर का साहित्यिक परिचय

कबीर संत काव्यधारा के सर्वाधिक प्रभावशाली कवियों में माने जाते हैं। उनका काव्य जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से जुड़ा हुआ है। उन्होंने पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा अनुभव और आत्मबोध को अधिक महत्त्व दिया।

कबीर की वाणी का संकलन विभिन्न रूपों में हुआ है। उनके नाम से सम्बद्ध प्रमुख रचनात्मक रूपों में–

- साखी
- सबद
- रमैनी का उल्लेख किया जाता है।

साखी प्रायः दोहे के रूप में कही गई शिक्षाप्रद वाणी है। इसमें जीवन, साधना और व्यवहार से सम्बन्धित विचारों को संक्षिप्त रूप में व्यक्त किया गया है।

सबद में भक्ति, आध्यात्मिक अनुभव और भावात्मक अभिव्यक्ति को अधिक महत्त्व मिलता है। रमैनी में अपेक्षाकृत विस्तृत कथन और विचारात्मक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। कबीर की वाणी का सबसे बड़ा गुण यह है कि उसमें जीवन की वास्तविक समस्याओं पर सीधी दृष्टि मिलती है। वे केवल आध्यात्मिक उपदेश नहीं देते, बल्कि मनुष्य को अपने व्यवहार, विचार और सामाजिक सम्बन्धों पर भी विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

5.2.3 कबीर की काव्य-दृष्टि

कबीर की काव्य-दृष्टि अनुभव और आत्मबोध पर आधारित है। वे बाहरी दिखावे के बजाय मनुष्य के आंतरिक परिवर्तन को महत्त्व देते हैं।

उनकी काव्य-दृष्टि के प्रमुख आधार हैं–

1. निर्गुण भक्ति

कबीर का ईश्वर निराकार और निर्गुण है। वे ईश्वर को किसी मूर्ति या निश्चित बाहरी रूप में सीमित नहीं करते।

2. आत्मानुभूति - कबीर के लिए सत्य का वास्तविक ज्ञान स्वयं के भीतर खोजने से प्राप्त होता है।

3. प्रेम

प्रेम कबीर की साधना का मूल आधार है। उनके लिए प्रेम केवल भावनात्मक सम्बन्ध नहीं, बल्कि मनुष्य और परम सत्य के बीच आंतरिक सम्बन्ध है।

4. गुरु का महत्त्व --
गुरु मनुष्य को सही मार्ग दिखाता है और अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाता है।

5. सामाजिक समानता

कबीर जाति, ऊँच-नीच और सामाजिक भेदभाव के विरोधी हैं। उनके लिए मनुष्य की श्रेष्ठता जन्म से नहीं, उसके आचरण और ज्ञान से निर्धारित होती है।

6. आडंबर-विरोध

उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले बाहरी प्रदर्शन और कर्मकांड की आलोचना की।

कबीर की काव्य-दृष्टि इस प्रकार जीवन को भीतर से बदलने पर बल देती है।

5.2.4 कबीर की भाषा एवं शैली

कबीर की भाषा उनकी सबसे बड़ी साहित्यिक विशेषताओं में से एक है। उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो सामान्य जन को आसानी से समझ में आ सके। उनकी भाषा को प्रायः सधुक्कड़ी या मिश्रित लोकभाषिक रूप से जोड़ा जाता है।

उनकी भाषा में विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के शब्द मिलते हैं। यही कारण है कि कबीर की वाणी में लोकजीवन की सहजता और प्रभाव दिखाई देता है।

कबीर की शैली की प्रमुख विशेषताएँ–

- सरलता
- सहजता
- स्पष्टता

- व्यंग्यात्मकता
- प्रतीकात्मकता
- संवादात्मकता
- संक्षिप्तता
- प्रभावशीलता

कबीर अपने विचारों को सीधे और निर्भीक ढंग से व्यक्त करते हैं। कई बार वे प्रश्न करते हैं, कई बार व्यंग्य करते हैं और कई बार उदाहरण देकर बात समझाते हैं।

उनकी भाषा में लोकजीवन से लिए गए अनेक बिंब मिलते हैं। दैनिक जीवन की वस्तुओं और अनुभवों के माध्यम से वे गहरे आध्यात्मिक सत्य को समझाते हैं।

5.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

5.3.1 कबीर के दोहों का परिचय

कबीर के दोहे हिन्दी साहित्य में अत्यंत लोकप्रिय हैं। छोटे आकार के होते हुए भी इन दोहों में जीवन का गहरा अनुभव और व्यापक विचार समाहित है।

कबीर का दोहा केवल काव्यात्मक कथन नहीं है। उसमें एक विचार, जीवन-दृष्टि या अनुभव को अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

कबीर के दोहों की प्रमुख विषय-वस्तु है–

- आत्मज्ञान
- गुरु-महिमा
- प्रेम
- मानवता

- सामाजिक समानता
- धार्मिक पाखंड का विरोध
- अहंकार का त्याग
- मधुर वाणी
- आत्म-सुधार
- जीवन की सार्थकता

उनके दोहों की लोकप्रियता का कारण उनकी सहज भाषा और जीवन से सीधा सम्बन्ध है।

5.3.2 कबीर के दोहों में आत्मज्ञान

कबीर के काव्य में आत्मज्ञान को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। मनुष्य अक्सर सत्य को बाहर खोजता है, जबकि कबीर उसे अपने भीतर देखने की प्रेरणा देते हैं।

उनके विचार का मूल यह है कि बाहरी ज्ञान तभी सार्थक है जब वह मनुष्य के भीतर परिवर्तन उत्पन्न करे। केवल पुस्तकों को पढ़ना या धार्मिक बातें सुनना पर्याप्त नहीं है। वास्तविक ज्ञान जीवन के अनुभव और आत्मचिन्तन से प्राप्त होता है।

कबीर मनुष्य को अपने भीतर झाँकने के लिए प्रेरित करते हैं। वे बताते हैं कि मनुष्य को सबसे पहले अपनी कमजोरियों, अहंकार और अज्ञान को पहचानना चाहिए।

इस प्रकार आत्मज्ञान कबीर के दोहों का महत्त्वपूर्ण आधार है।

5.3.3 कबीर के दोहों में गुरु-महिमा

कबीर की साधना में गुरु का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गुरु वह है जो मनुष्य को अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाता है।

कबीर का प्रसिद्ध दोहा है–

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।

बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय॥"

इस दोहे में गुरु की महत्ता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है। कवि के सामने गुरु और ईश्वर दोनों उपस्थित हैं। वह पहले गुरु को प्रणाम करना चाहता है, क्योंकि गुरु ने ही उसे ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग बताया है।

यहाँ गुरु केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि ज्ञान और मार्गदर्शन का प्रतीक है।

कबीर के अनुसार सच्चा गुरु–

- अज्ञान दूर करता है।
- सत्य का मार्ग दिखाता है।
- आत्मबोध की प्रेरणा देता है।
- मनुष्य को अहंकार से मुक्त करता है।
- जीवन को सही दिशा प्रदान करता है।

5.3.4 कबीर के दोहों में सामाजिक चेतना

कबीर अपने समय के सामाजिक जीवन से पूरी तरह जुड़े हुए थे। उन्होंने समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, जातिगत भेदभाव और बाहरी आडंबरों को चुनौती दी।

उनकी दृष्टि में मनुष्य का मूल्य उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके आचरण और ज्ञान से निर्धारित होना चाहिए।

कबीर की सामाजिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने की प्रेरणा देते हैं। वे धार्मिक या जातिगत पहचान के आधार पर श्रेष्ठता के दावे को स्वीकार नहीं करते।

उनकी वाणी सामाजिक सुधार की चेतना उत्पन्न करती है। वे व्यक्ति को पहले स्वयं को सुधारने की प्रेरणा देते हैं और फिर समाज में परिवर्तन की बात करते हैं।

5.3.5 कबीर के दोहों में आडंबर-विरोध

कबीर ने धार्मिक जीवन में मौजूद बाहरी आडंबरों का खुलकर विरोध किया। उनका मानना था कि केवल बाहरी रूप बदलने, धार्मिक प्रतीक धारण करने या कर्मकांड करने से मनुष्य आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ नहीं बन जाता।

वे धर्म के वास्तविक उद्देश्य को आंतरिक शुद्धता और सत्य की खोज में देखते हैं।

कबीर का प्रसिद्ध कथन है–

"माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर॥"

इस दोहे में कवि बाहरी साधना और आंतरिक परिवर्तन के अन्तर को स्पष्ट करता है। हाथ से माला फेरते रहने से यदि मन में परिवर्तन नहीं आता तो साधना अधूरी है।

कबीर का संदेश है कि धार्मिक साधना का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य के विचार और व्यवहार में परिवर्तन लाना होना चाहिए।

5.3.6 कबीर के दोहों में मानवतावादी दृष्टि

कबीर का साहित्य मानवतावादी चेतना से भरपूर है। वे मनुष्य को जाति, धर्म और बाहरी पहचान से ऊपर उठकर देखने की प्रेरणा देते हैं।

उनकी दृष्टि में सभी मनुष्यों के भीतर एक ही प्रकार की मानवीय चेतना है। इसलिए किसी व्यक्ति को जन्म या सामाजिक स्थिति के आधार पर छोटा-बड़ा समझना उचित नहीं है।

कबीर के दोहों में प्रेम, करुणा, सहानुभूति और मधुर व्यवहार को महत्त्व दिया गया है।

उनका प्रसिद्ध दोहा है–

"ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय॥"

इस दोहे में मधुर वाणी और विनम्र व्यवहार का महत्त्व बताया गया है। ऐसी वाणी जो दूसरे को सुख दे और स्वयं के मन को भी शांति प्रदान करे, वही सार्थक वाणी है।

यह विचार आज के सामाजिक जीवन में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

5.3.7 कबीर के दोहों की भाषा-शैली एवं काव्य-सौंदर्य

कबीर के दोहों की भाषा सरल और प्रभावशाली है। वे कठिन दार्शनिक विचारों को सामान्य जीवन के उदाहरणों के माध्यम से समझाते हैं।

उनकी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं–

सरलता -- कबीर सामान्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसलिए उनके दोहे जनसाधारण तक आसानी से पहुँचते हैं।

संक्षिप्तता -- दोहा आकार में छोटा होता है, लेकिन उसमें गहन विचार समाहित होते हैं।

व्यंग्य - कबीर सामाजिक और धार्मिक विसंगतियों पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार करते हैं।

प्रतीक -- वे दैनिक जीवन की वस्तुओं को प्रतीक बनाकर गहरे अर्थ व्यक्त करते हैं।

विरोधाभास --कई बार वे ऐसे कथन करते हैं जो पहली दृष्टि में विरोधाभासी लगते हैं, लेकिन उनके पीछे गहरा जीवन-सत्य छिपा होता है।

लोकानुभव -- उनके काव्य में सामान्य जनजीवन के अनुभवों का व्यापक प्रयोग मिलता है।

इस प्रकार कबीर की काव्य-भाषा विचार और अनुभव दोनों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती है।

5.3.8 कबीर के दोहों की वर्तमान प्रासंगिकता

कबीर के विचार केवल मध्यकालीन समाज तक सीमित नहीं हैं। आज भी उनके दोहे मनुष्य को आत्मचिन्तन, प्रेम, समानता और विवेक की प्रेरणा देते हैं।

आज के समाज में जाति, धर्म, वर्ग और अन्य आधारों पर विभाजन की स्थितियाँ दिखाई देती हैं। ऐसे समय में कबीर की मानवतावादी दृष्टि विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाती है।

इसी प्रकार सोशल मीडिया और आधुनिक संचार माध्यमों के समय में भाषा के प्रयोग का महत्त्व बढ़ गया है। कबीर का मधुर वाणी और संयमित व्यवहार का संदेश आज भी उपयोगी है। धार्मिक कट्टरता और बाहरी प्रदर्शन के स्थान पर विवेक और मानवीय मूल्यों को महत्त्व देने की आवश्यकता आज भी है।

कबीर की प्रासंगिकता निम्न क्षेत्रों में देखी जा सकती है–

1. सामाजिक समानता
2. धार्मिक सहिष्णुता
3. मानवतावाद
4. आत्मचिन्तन
5. नैतिक जीवन
6. मधुर व्यवहार
7. अंधविश्वास से मुक्ति
8. सामाजिक समरसता

इस दृष्टि से कबीर केवल मध्यकाल के कवि नहीं, बल्कि आज भी जीवन-मूल्यों के महत्त्वपूर्ण शिक्षक हैं।

5.3.9 कबीर के चयनित दोहे : भाव एवं संदेश

दोहा 1

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय॥"

भावार्थ: गुरु और ईश्वर दोनों सामने हों तो पहले गुरु को प्रणाम करना चाहिए, क्योंकि गुरु ही ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखाता है।

संदेश: ज्ञान देने वाले गुरु का जीवन में अत्यंत महत्त्व है।

-

दोहा 2

"ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय॥"

भावार्थ: मनुष्य को ऐसी मधुर और विनम्र भाषा बोलनी चाहिए जिससे दूसरों को सुख मिले और स्वयं के मन को भी शांति प्राप्त हो।

संदेश: मधुर वाणी और विनम्र व्यवहार सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक हैं।

दोहा 3

"माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर॥"

भावार्थ: केवल हाथ से माला फेरते रहने से मन नहीं बदलता। वास्तविक साधना मन के परिवर्तन में है।

संदेश: बाहरी कर्मकांड से अधिक महत्त्व आंतरिक शुद्धता का है।

दोहा 4

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।

जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥"

भावार्थ: जब व्यक्ति दूसरों में दोष खोजने निकलता है तो उसे अपने भीतर झाँकना चाहिए। आत्मनिरीक्षण करने पर उसे अपनी कमियाँ दिखाई दे सकती हैं।

संदेश: आत्म-सुधार दूसरों की आलोचना से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

दोहा 5

"काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करेगा कब॥"

भावार्थ: जो काम कल करना है उसे आज और जो आज करना है उसे अभी कर लेना चाहिए, क्योंकि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता।

संदेश: समय का सदुपयोग और कर्मठता जीवन की सफलता के लिए आवश्यक हैं।

दोहा 6

"धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥"

भावार्थ: प्रत्येक कार्य अपने उचित समय पर पूरा होता है। जैसे पौधे को पानी देने के बाद भी फल आने में समय लगता है, वैसे ही जीवन में धैर्य आवश्यक है।

संदेश: सफलता के लिए धैर्य और निरंतर प्रयास आवश्यक हैं।

5.3.10 कबीर के दोहों का काव्य-सौंदर्य

कबीर के दोहों की शक्ति उनकी संक्षिप्तता और अर्थ-गहनता में है। वे बहुत कम शब्दों में जीवन का व्यापक अनुभव व्यक्त कर देते हैं।

उनके दोहों में–

- भाव की स्पष्टता
- विचार की गहराई
- भाषा की सहजता
- लोकानुभव
- व्यंग्य
- प्रतीक
- लय
- नैतिक संदेश का सुंदर समन्वय मिलता है।

कबीर के दोहे पाठक को केवल सूचना नहीं देते, बल्कि उसे सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। यही उनकी स्थायी साहित्यिक शक्ति है।

5.3 11 कबीर का साहित्यिक महत्त्व

कबीर का हिन्दी साहित्य में महत्त्व अनेक स्तरों पर स्थापित है। उन्होंने संत काव्य को प्रभावशाली वैचारिक आधार प्रदान किया। उनकी कविता में आध्यात्मिकता और सामाजिक चेतना का अद्‌भुत समन्वय मिलता है।

उन्होंने लोकभाषा को साहित्यिक अभिव्यक्ति का प्रभावशाली माध्यम बनाया। उनके काव्य में शास्त्रीय जटिलता के स्थान पर जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव दिखाई देता है।

कबीर का साहित्य–

- सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न उठाता है।
- धार्मिक संकीर्णता का विरोध करता है।

- मानव समानता का समर्थन करता है।
- आत्मज्ञान की प्रेरणा देता है।
- गुरु के महत्त्व को स्थापित करता है।
- प्रेम और सहिष्णुता का संदेश देता है।

इसी कारण कबीर हिन्दी साहित्य की अत्यंत प्रभावशाली और लोकप्रिय साहित्यिक परम्परा के प्रतिनिधि कवि हैं।

5.4 अपनी प्रगति जाँचें

1. कबीर के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
2. कबीर किस काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं?
3. कबीर की काव्य-दृष्टि की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
4. कबीर के काव्य में गुरु का क्या महत्त्व है?
5. कबीर की भाषा की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
6. कबीर के दोहों में सामाजिक चेतना किस प्रकार व्यक्त हुई है?
7. कबीर के काव्य में मानवतावादी दृष्टि को स्पष्ट कीजिए।
8. कबीर के दोहों की वर्तमान प्रासंगिकता पर टिप्पणी कीजिए।

5.5 सारांश

कबीर मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख संत कवि हैं। उनका काव्य निर्गुण भक्ति, आत्मज्ञान, प्रेम, गुरु-महिमा, सामाजिक समानता और आडंबर-विरोध की चेतना से जुड़ा हुआ है।

कबीर का जीवन सामान्य जनजीवन के निकट था। उन्होंने अपने समय की सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों को गहराई से देखा तथा अपनी वाणी के माध्यम से समाज को जागरूक किया।

उनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति में साखी, सबद और रमैनी प्रमुख हैं। दोहा उनके विचारों की अत्यंत प्रभावशाली अभिव्यक्ति है। उन्होंने छोटे-छोटे दोहों में जीवन के गहरे सत्य प्रस्तुत किए।

कबीर के दोहों में गुरु का महत्त्व, आत्मज्ञान, मधुर वाणी, आत्मनिरीक्षण, समय का सदुपयोग, धैर्य, मानवता और सामाजिक समानता जैसे विषय मिलते हैं।

उनकी भाषा सरल, सहज, लोकानुभव से जुड़ी और प्रभावशाली है। वे व्यंग्य और प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहते हैं।

कबीर का साहित्य आज भी प्रासंगिक है। सामाजिक भेदभाव, धार्मिक संकीर्णता, बाहरी आडंबर और मानवीय सम्बन्धों में बढ़ती दूरी के बीच कबीर की वाणी प्रेम, समानता, विवेक और आत्मचिन्तन का संदेश देती है।

5.6 मुख्य शब्द एवं अर्थ

संत काव्य – भक्ति साहित्य की वह धारा जिसमें संत कवियों ने आध्यात्मिकता, मानवता और सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया।

निर्गुण भक्ति – ऐसी भक्ति जिसमें ईश्वर को निराकार और गुणातीत माना जाता है।

साखी – संत काव्य में प्रचलित शिक्षाप्रद कथन, प्रायः दोहे के रूप में।

सबद – भक्ति एवं आध्यात्मिक भावों को व्यक्त करने वाला पद।

रमैनी – कबीर की वाणी का अपेक्षाकृत विस्तृत रचनात्मक रूप।

रूढ़ि – लंबे समय से चली आ रही ऐसी परम्परा जिसे लोग बिना विचार किए स्वीकार करते हैं।

मानवतावाद – मनुष्य और उसके कल्याण को प्रमुख महत्त्व देने वाली विचारधारा।

आत्मज्ञान – अपने वास्तविक स्वरूप और आंतरिक सत्य का ज्ञान।

सामाजिक चेतना – समाज की समस्याओं, असमानताओं और सुधार की आवश्यकता के प्रति जागरूकता।

सधुक्कड़ी – संत कवियों द्वारा प्रयुक्त मिश्रित लोकभाषिक अभिव्यक्ति।

राजाश्रय – शासक या राजा द्वारा कवि एवं कलाकार को दिया जाने वाला संरक्षण।

आत्मनिरीक्षण – अपने विचारों, व्यवहार और कमियों का स्वयं परीक्षण करना।

समरसता – समाज में समानता, सहयोग और पारस्परिक सद्भाव की भावना।

5.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर किस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं?
2. कबीर की भक्ति किस प्रकार की है?
3. कबीर की वाणी के प्रमुख रूप कौन-कौन से हैं?
4. कबीर के अनुसार गुरु का क्या महत्त्व है?
5. कबीर की भाषा की दो विशेषताएँ लिखिए।
6. कबीर किस प्रकार के धार्मिक आडंबरों का विरोध करते हैं?
7. कबीर के काव्य में मानवतावादी दृष्टि क्या है?
8. कबीर के दोहों की सबसे बड़ी विशेषता क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर के साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय देते हुए उनकी प्रमुख काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2. कबीर की निर्गुण भक्ति और काव्य-दृष्टि का विवेचन कीजिए।

3. कबीर के दोहों में व्यक्त सामाजिक चेतना को स्पष्ट कीजिए।

4. कबीर के दोहों में आडंबर-विरोध और मानवतावादी दृष्टि का विवेचन कीजिए।

5. कबीर की भाषा एवं शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

6. कबीर के दोहों की वर्तमान प्रासंगिकता पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

5.8 अपनी प्रगति जाँचें – उत्तर

उत्तर 1: कबीर संत काव्यधारा के प्रमुख निर्गुण भक्त कवि हैं। कबीर मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख संत कवि हैं। उनका काव्य निर्गुण भक्ति, आत्मज्ञान, प्रेम, गुरु-महिमा, सामाजिक समानता और आडंबर-विरोध की चेतना से जुड़ा हुआ है।

उत्तर 2: कबीर ईश्वर को निराकार और निर्गुण मानते हैं। उनकी भक्ति बाहरी कर्मकांड की अपेक्षा आंतरिक अनुभव पर आधारित है।

उत्तर 3: कबीर की वाणी के प्रमुख रूप साखी, सबद और रमैनी हैं।

उत्तर 4: कबीर गुरु को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि गुरु मनुष्य को अज्ञान से ज्ञान और सत्य की ओर ले जाता है।

उत्तर 5: कबीर की भाषा सरल, सहज, लोकभाषा-आधारित और प्रभावशाली है।

उत्तर 6: कबीर ऐसे धार्मिक कर्मकांड और बाहरी प्रदर्शन का विरोध करते हैं जिनसे मनुष्य के भीतर वास्तविक परिवर्तन नहीं आता।

उत्तर 7: कबीर मनुष्य को जाति, धर्म और बाहरी पहचान से ऊपर उठकर समान दृष्टि से देखने की प्रेरणा देते हैं। यही उनकी मानवतावादी दृष्टि है।

उत्तर 8: कबीर के दोहों की प्रमुख विशेषता यह है कि वे अत्यंत संक्षिप्त रूप में गहरे जीवन-सत्य और व्यापक विचार प्रस्तुत करते हैं।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद – कबीर।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद – हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास।
4. नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास।
5. बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास।
6. वर्मा, रामकुमार – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
7. श्यामसुन्दर दास – कबीर ग्रन्थावली।
8. मध्यकालीन काव्य-कुंज, सम्पादक – रामराजन पाण्डेय, खाटूश्याम प्रकाशन, रोहतक।
9. कबीर के साहित्य एवं संत काव्य पर आधारित विश्वविद्यालय स्तरीय अध्ययन-सामग्री।
10. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य एवं भक्ति आंदोलन से सम्बन्धित मानक संदर्भ ग्रन्थ।

कोर्ड कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या : 6	Vetter : Dr. कमलेश देवी
इकाई - 3 काव्य के तत्त्व	

पाठ-9 : काव्य के तत्त्व

6.0 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 पाठ का मुख्य भाग

6.2.1 काव्य का अर्थ एवं परिभाषा

6.2.2 काव्य के तत्त्व : स्वरूप एवं महत्त्व

6.2.3 काव्य तत्त्वों का पारस्परिक संबंध एवं उनकी उपयोगिता

6.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

9.3.1 भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य-तत्त्वों की अवधारणा

9.3.2 काव्य-तत्त्वों की समकालीन प्रासंगिकता, आलोचनात्मक मूल्यांकन

9.3.3 काव्य-तत्त्वों का समग्र मूल्यांकन, निष्कर्ष

6.4 अपनी प्रगति जाँचें

6.5 सारांश

6.6 मुख्य शब्द (शब्दार्थ सहित)

6.7 स्वमूल्यांकन प्रश्न

6..8 उत्तर संकेत

6 .9 संदर्भ ग्रंथ

6.0 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी काव्य का अर्थ एवं स्वरूप समझ सकेंगे।

काव्य के प्रमुख तत्त्वों का परिचय प्राप्त करेंगे।

भाव, कल्पना, बुद्धि तथा भाषा-शैली के महत्त्व को समझ सकेंगे।

रस, अलंकार एवं छंद के योगदान का अध्ययन कर सकेंगे।

काव्य-तत्त्वों के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे।

विभिन्न काव्य उदाहरणों के आधार पर काव्य-तत्त्वों की पहचान कर सकेंगे।

साहित्य के अध्ययन में काव्य-तत्त्वों की उपयोगिता का मूल्यांकन कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

काव्य मानव जीवन की संवेदनाओं, अनुभूतियों तथा कल्पनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। मनुष्य अपने सुख-दुःख, प्रेम, करुणा, उत्साह, आशा, निराशा तथा अन्य भावों को भाषा के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करता है कि वे पाठक या श्रोता के हृदय को स्पर्श करें। यही अभिव्यक्ति जब कलात्मक रूप धारण कर लेती है, तब उसे काव्य कहा जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना गया है, बल्कि इसे लोकमंगल, नैतिक शिक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण तथा सौन्दर्यबोध का प्रभावी माध्यम भी स्वीकार

किया गया है। इसी कारण संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों ने काव्य के स्वरूप, उद्देश्य और तत्त्वों पर विस्तार से विचार किया है।

किसी भवन की मजबूती उसके विभिन्न अंगों पर निर्भर करती है, उसी प्रकार किसी काव्य की श्रेष्ठता भी उसके तत्त्वों पर आधारित होती है। यदि काव्य में भावों की गहराई, कल्पना की नवीनता, भाषा की मधुरता, रस की प्रभावशीलता, अलंकारों का सौन्दर्य तथा छंद की

लयात्मकता का समुचित समन्वय हो, तो वह काव्य पाठक के मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ता है

6.2 पाठ का मुख्य भाग (Main Body of the Text)

6.2.1 काव्य का अर्थ एवं परिभाषा

काव्य का अर्थ

'काव्य' शब्द संस्कृत की 'कु' (कवि) धातु से बना माना जाता है। सामान्य अर्थ में काव्य वह साहित्यिक रचना है जिसमें कवि अपने हृदय के भावों, अनुभूतियों, विचारों और कल्पनाओं को कलात्मक एवं प्रभावपूर्ण भाषा में व्यक्त करता है। काव्य केवल शब्दों का समूह नहीं है, बल्कि वह मानव हृदय की संवेदनाओं का सजीव चित्रण है।

जब मनुष्य किसी दृश्य, घटना, व्यक्ति या अनुभव से प्रभावित होकर अपनी अनुभूतियों को सौन्दर्यपूर्ण भाषा में व्यक्त करता है, तब काव्य की रचना होती है। इसलिए काव्य में केवल तथ्य नहीं होते, बल्कि भाव, सौन्दर्य, कल्पना और कलात्मकता का भी समावेश होता है।

काव्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है, बल्कि मानव जीवन को संस्कारित करना, नैतिक मूल्यों का विकास करना, समाज का मार्गदर्शन करना तथा सौन्दर्यबोध उत्पन्न करना भी है। यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक काव्य को समाज का दर्पण और मानव संस्कृति का संवाहक माना गया है।

काव्य की प्रमुख परिभाषाएँ

भारतीय काव्यशास्त्र में अनेक आचार्यों ने काव्य की परिभाषा दी है। उनमें से प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. आचार्य भामह

"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।"

अर्थ - शब्द और अर्थ का सुंदर एवं कलात्मक समन्वय ही काव्य है।

व्याख्या - भामह के अनुसार केवल सुंदर शब्द या केवल श्रेष्ठ अर्थ पर्याप्त नहीं हैं। जब दोनों का संतुलित एवं प्रभावशाली मेल होता है, तभी श्रेष्ठ काव्य की रचना होती है।

2. आचार्य दण्डी

दण्डी के अनुसार–

"इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यम्।"

अर्थ - मनोवांछित अर्थ को व्यक्त करने वाली पदावली काव्य कहलाती है।

व्याख्या - दण्डी ने काव्य में भाषा की सुसंगठित एवं उद्देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति को महत्त्व दिया है।

3. आचार्य मम्मट

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।"

भावार्थ - दोषरहित, गुणयुक्त तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ अलंकारयुक्त शब्द और अर्थ का समन्वय काव्य है।

व्याख्या - मम्मट के अनुसार श्रेष्ठ काव्य में भाषा और अर्थ दोनों दोषरहित होने चाहिए तथा उनमें गुण और अलंकार भी होने चाहिए।

4. आचार्य विश्वनाथ

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"

अर्थ - रसयुक्त वाक्य ही काव्य है।

व्याख्या - विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना है। उनके अनुसार जिस रचना में रस की अनुभूति हो, वही वास्तविक काव्य है।

5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार–

"हृदय की मुक्तावस्था के लिए किया गया शब्द-विधान ही कविता है।"

व्याख्या - शुक्ल जी ने कविता को मानव हृदय की स्वाभाविक एवं मुक्त अभिव्यक्ति माना है।

काव्य की विशेषताएँ

काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. काव्य मानव की भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

2. इसमें शब्द और अर्थ का सुंदर समन्वय होता है।

3. काव्य में कल्पना, सौन्दर्य और संवेदनशीलता का समावेश रहता है।

4. काव्य पाठक के मन में रस की अनुभूति उत्पन्न करता है।

5. काव्य समाज को प्रेरणा एवं नैतिक दिशा प्रदान करता है।

6. काव्य मानव जीवन के अनुभवों का कलात्मक चित्रण करता है।

7. श्रेष्ठ काव्य कालजयी होता है तथा युगों तक अपनी प्रासंगिकता बनाए रखता है।

काव्य का महत्त्व

काव्य मानव जीवन को संवेदनशील बनाता है। यह मनुष्य में प्रेम, करुणा, दया, त्याग, साहस तथा देशभक्ति जैसे उच्च मानवीय मूल्यों का विकास करता है। काव्य के माध्यम से समाज की समस्याओं को भी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसके अतिरिक्त काव्य भाषा को समृद्ध करता है, संस्कृति का संरक्षण करता है तथा आने वाली पीढ़ियों तक ज्ञान और अनुभव पहुँचाने का कार्य करता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि जीवन, समाज और संस्कृति का महत्वपूर्ण दर्पण है।

काव्य के तत्त्व वे आधारभूत घटक हैं जिनके बिना श्रेष्ठ काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती। विभिन्न विद्वानों ने इनकी संख्या अलग-अलग मानी है, किन्तु सामान्यतः भाव, कल्पना, बुद्धि, भाषा-शैली, रस, अलंकार और छंद को काव्य के प्रमुख तत्त्व माना जाता है।

इन तत्त्वों के समुचित संतुलन से ही काव्य में सौन्दर्य, प्रभाव, संप्रेषणीयता तथा कलात्मकता का विकास होता है। अतः हिन्दी साहित्य के अध्ययन में काव्य-तत्त्वों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक माना जाता है।

6.2.2 काव्य के तत्त्व : स्वरूप एवं महत्त्व

काव्य के तत्त्व : परिचय

किसी भी श्रेष्ठ काव्य की रचना अनेक आवश्यक घटकों के समन्वय से होती है। इन घटकों को काव्य के तत्त्व कहा जाता है। जिस प्रकार किसी भवन की मजबूती उसकी नींव, दीवारों, छत और अन्य भागों पर निर्भर करती है, उसी प्रकार काव्य की उत्कृष्टता उसके विभिन्न तत्त्वों पर आधारित होती है। यदि इनमें से कोई एक तत्त्व भी दुर्बल हो जाए, तो काव्य का प्रभाव कम हो जाता है।

भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न आचार्यों ने काव्य के अनेक तत्त्वों का उल्लेख किया है। यद्यपि सभी विद्वानों के मत समान नहीं हैं, फिर भी सामान्य रूप से भाव, कल्पना, बुद्धि, भाषा-शैली, रस, अलंकार तथा छंद को काव्य के प्रमुख तत्त्व माना जाता है।

ये सभी तत्त्व एक-दूसरे के पूरक हैं। किसी एक तत्त्व की प्रधानता होने पर भी अन्य तत्त्वों की उपस्थिति आवश्यक होती है। इन सभी के समन्वय से ही काव्य में सौन्दर्य, प्रभावशीलता और कलात्मकता का विकास होता है।

काव्य के तत्त्वों का स्वरूप

काव्य के तत्त्व वे मूल आधार हैं जो किसी रचना को साहित्यिक उत्कृष्टता प्रदान करते हैं। प्रत्येक तत्त्व का अपना स्वतंत्र महत्त्व है, किन्तु उनका वास्तविक सौन्दर्य उनके सामंजस्य में निहित होता है।

1. भाव तत्त्व

भाव काव्य का प्राण माना जाता है। कवि के हृदय में उत्पन्न होने वाली अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ और मनोभाव ही भाव तत्त्व कहलाते हैं। यदि काव्य में भावों की गहराई नहीं होगी तो वह पाठक के हृदय को स्पर्श नहीं कर सकेगा।

उदाहरण के लिए, सूरदास के वात्सल्य पदों में माता यशोदा का स्नेह, तुलसीदास की रामभक्ति तथा महादेवी वर्मा की करुणा—ये सभी भाव तत्त्व की श्रेष्ठ अभिव्यक्तियाँ हैं।

2. कल्पना तत्त्व

कल्पना वह शक्ति है जिसके माध्यम से कवि साधारण वस्तुओं को भी असाधारण सौन्दर्य प्रदान करता है। कल्पना के कारण काव्य में नवीनता, आकर्षण और कलात्मकता आती है।

कल्पना का अर्थ असत्य का चित्रण करना नहीं है, बल्कि सत्य को अधिक प्रभावशाली एवं सौन्दर्यपूर्ण रूप में प्रस्तुत करना है।

उदाहरण के रूप में यदि कवि चन्द्रमा को प्रियतम का मुख कहता है, तो यह कल्पना की सुंदर अभिव्यक्ति है।

3. बुद्धि तत्त्व

बुद्धि तत्त्व काव्य को विचारों की गंभीरता प्रदान करता है। केवल भावुकता से श्रेष्ठ काव्य नहीं बनता; उसमें उचित विचार, तर्क, विवेक तथा जीवन-दर्शन का भी समावेश होना चाहिए।

बुद्धि तत्त्व के कारण काव्य समाज को दिशा देता है, नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है तथा पाठक को चिंतन के लिए प्रेरित करता है।

कबीर, रहीम तथा दिनकर के काव्य में बुद्धि तत्त्व की सशक्त अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

काव्य के तत्त्वों का महत्त्व

काव्य के तत्त्वों का महत्त्व निम्नलिखित बिंदुओं में स्पष्ट किया जा सकता है—

1. ये काव्य को प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाते हैं।

2. काव्य में सौन्दर्य एवं कलात्मकता का विकास करते हैं।

3. पाठक के मन में रस की अनुभूति उत्पन्न करते हैं।

4. काव्य को सामान्य गद्य से अलग पहचान प्रदान करते हैं।

5. समाज, संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्त करने में सहायता करते हैं।

4. भाषा-शैली तत्त्व

अर्थ

भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा कवि अपने विचारों और भावों को व्यक्त करता है, जबकि शैली से तात्पर्य उन विचारों को प्रस्तुत करने के विशिष्ट ढंग से है। भाषा और शैली मिलकर काव्य को प्रभावशाली, आकर्षक तथा संप्रेषणीय बनाती हैं।

यदि भाव काव्य की आत्मा है, तो भाषा उसका शरीर है। श्रेष्ठ भाव भी प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकते यदि उनकी अभिव्यक्ति उपयुक्त भाषा में न हो।

भाषा-शैली की विशेषताएँ

1. भाषा सरल, स्पष्ट एवं प्रभावपूर्ण होनी चाहिए।

2. भाषा प्रसंग के अनुकूल होनी चाहिए।

3. शैली में मौलिकता एवं प्रवाह होना चाहिए।

महत्त्व

भाषा भावों को पाठक तक पहुँचाने का माध्यम है।

शैली कवि की व्यक्तिगत पहचान बनाती है।

प्रभावशाली भाषा काव्य को स्मरणीय बनाती है।

भाषा एवं शैली काव्य की कलात्मक गरिमा को बढ़ाती हैं।

उदाहरण: तुलसीदास की भाषा सरल एवं लोकग्राह्य है, जबकि जयशंकर प्रसाद की भाषा गंभीर, संस्कृतनिष्ठ और कलात्मक मानी जाती है।

5. रस तत्त्व

अर्थ

रस काव्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। रस वह आनंद है जिसकी अनुभूति पाठक या श्रोता काव्य का आस्वादन करते समय करता है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस को काव्य की आत्मा कहा गया है।

जब काव्य में व्यक्त भाव पाठक के हृदय में समान भाव उत्पन्न करते हैं, तब रस की अनुभूति होती है।

प्रमुख रस

भारतीय काव्यशास्त्र में मुख्यतः नौ रस माने गए हैं–

1. श्रृंगार रस 2. वीर रस 3. करुण रस 4. हास्य रस 5. रौद्र रस 6. भयानक रस 7. वीभत्स रस 8. अद्भुत रस 9. शांत रस

रस का महत्त्व

रस काव्य को जीवंत बनाता है।

यह पाठक को भावानुभूति प्रदान करता है।

रस के बिना काव्य नीरस एवं प्रभावहीन हो जाता है।

रस काव्य की आत्मा माना गया है।

6. अलंकार तत्त्व

अर्थ

'अलंकार' का शाब्दिक अर्थ है–आभूषण। जिस प्रकार आभूषण शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अलंकार काव्य की शोभा एवं सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं।

अलंकारों के प्रयोग से भाषा अधिक प्रभावशाली, आकर्षक तथा मधुर बन जाती है।

अलंकारों के प्रमुख प्रकार

(क) शब्दालंकार - जहाँ शब्दों के कारण सौन्दर्य उत्पन्न हो।

(ख) अर्थालंकार - जहाँ अर्थ के कारण सौन्दर्य उत्पन्न हो।

महत्त्व

काव्य की शोभा बढ़ाते हैं।

भाषा को आकर्षक बनाते हैं।

भावों की अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाते हैं।

7. छंद तत्त्व

अर्थ

छंद काव्य की लयात्मक व्यवस्था है। वर्णों, मात्राओं तथा यति-गति के नियमानुसार रचित पद्य को छंद कहा जाता है।

छंद काव्य को संगीतात्मकता प्रदान करता है और उसके पाठ को अधिक मधुर बनाता है।

छंद का महत्त्व

1. काव्य में लय एवं संगीतात्मकता उत्पन्न करता है।

2. काव्य को स्मरण रखने में सहायता करता है।

3 . काव्य की कलात्मकता को बढ़ाता है।

4 भावों की अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाता है।

उदाहरण: दोहा, चौपाई, सोरठा, रोला, हरिगीतिका आदि हिन्दी के प्रसिद्ध छंद हैं।

काव्य के प्रमुख तत्त्वों का संक्षिप्त सार

तत्त्व	मुख्य कार्य
भाव	काव्य में संवेदना एवं अनुभूति उत्पन्न करना
कल्पना	नवीनता एवं सौन्दर्य प्रदान करना

बुद्धि	विचार एवं विवेक का समावेश करना
भाषा-शैली	भावों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करना
रस	पाठक को काव्यानन्द प्रदान करना
अलंकार	काव्य की शोभा बढ़ाना
छंद	लय एवं संगीतात्मकता उत्पन्न करना

6.2.3 काव्य तत्त्वों का पारस्परिक संबंध एवं उनकी उपयोगिता

काव्य तत्त्वों का पारस्परिक संबंध

काव्य के सभी तत्त्व एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। इनमें से कोई भी तत्त्व पूर्णतः स्वतंत्र नहीं है। प्रत्येक तत्त्व दूसरे तत्त्व की सहायता से ही अपना पूर्ण प्रभाव उत्पन्न करता है। यदि किसी काव्य में केवल भाव हों, परन्तु भाषा प्रभावशाली न हो, तो वह पाठक को आकर्षित नहीं कर पाएगा। इसी प्रकार यदि भाषा अत्यन्त सुंदर हो, परन्तु उसमें भावों की गहराई न हो, तो वह केवल शब्दों का प्रदर्शन बनकर रह जाएगी।

इस प्रकार श्रेष्ठ काव्य की रचना तभी संभव है जब सभी तत्त्वों में संतुलन और सामंजस्य हो।

1. भाव और कल्पना का संबंध

भाव और कल्पना का संबंध अत्यंत निकट है। भाव कवि के हृदय में उत्पन्न होते हैं, जबकि कल्पना उन भावों को सुंदर एवं कलात्मक रूप प्रदान करती है। कल्पना के अभाव में भावों की अभिव्यक्ति साधारण रह जाती है।

उदाहरण के लिए, यदि कवि केवल यह कहे कि "फूल सुंदर है", तो यह सामान्य कथन होगा। परन्तु यदि वह लिखे–"फूल मानो प्रकृति के अधरों पर खिली मुस्कान हो"–तो यह कल्पना भाव को अधिक प्रभावशाली बना देती है।

2. भाव और भाषा का संबंध

भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही संभव होती है। भाषा जितनी सरल, स्पष्ट और मधुर होगी, भाव उतनी ही सहजता से पाठक तक पहुँचेंगे।

यदि भाषा कठिन, कृत्रिम या असंगत हो, तो श्रेष्ठ भाव भी अपना प्रभाव खो देते हैं। इसलिए भाव और भाषा एक-दूसरे के पूरक हैं।

3. भाषा और अलंकार का संबंध

अलंकार भाषा की शोभा बढ़ाते हैं। परन्तु जहाँ भाषा ही उपयुक्त न हो, वहाँ अलंकार भी प्रभावहीन हो जाते हैं। इसी प्रकार अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग भी भाषा की स्वाभाविकता को नष्ट कर सकता है।

अतः भाषा और अलंकार का संतुलित प्रयोग ही श्रेष्ठ माना जाता है।

4. रस और भाव का संबंध

रस की उत्पत्ति भावों से होती है। जब कवि के भाव पाठक के हृदय में समान अनुभूति उत्पन्न करते हैं, तब रस का अनुभव होता है।

उदाहरण के लिए, करुण भाव के प्रभाव से करुण रस तथा वीर भाव के प्रभाव से वीर रस की अनुभूति होती है।

इसी कारण भारतीय काव्यशास्त्र में कहा गया है कि भाव रस के आधार हैं।

5. छंद और भाषा का संबंध

छंद भाषा को लय, गति तथा संगीतात्मकता प्रदान करता है। छंद के कारण काव्य का पाठ मधुर और आकर्षक बन जाता है। यदि भाषा में लय का अभाव हो, तो काव्य का प्रभाव कम हो जाता है।

विशेष रूप से गीत, भजन तथा मुक्तक काव्य में छंद का अत्यधिक महत्त्व है।

काव्य तत्त्वों में संतुलन का महत्त्व

श्रेष्ठ कवि वही होता है जो सभी काव्य-तत्त्वों का उचित एवं संतुलित प्रयोग करता है। किसी एक तत्त्व की अधिकता तथा दूसरे की उपेक्षा काव्य को असंतुलित बना देती है।

इसलिए श्रेष्ठ काव्य में भाव, कल्पना, बुद्धि, भाषा, रस, अलंकार तथा छंद का संतुलित समन्वय आवश्यक है।

काव्य तत्त्वों की उपयोगिता

काव्य-तत्त्व केवल साहित्यिक सौन्दर्य तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे व्यक्ति, समाज तथा संस्कृति के विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक तत्त्व काव्य को एक विशिष्ट गुण प्रदान करता है।

1. भावात्मक विकास में सहायक

काव्य के माध्यम से मनुष्य की संवेदनशीलता विकसित होती है। प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति, त्याग, वीरता तथा देशभक्ति जैसे श्रेष्ठ गुणों का विकास काव्य के माध्यम से होता है। भावप्रधान काव्य मनुष्य को अधिक मानवीय और संवेदनशील बनाता है।

2. सौन्दर्यबोध का विकास

काव्य में प्रयुक्त कल्पना, भाषा, अलंकार तथा रस पाठक में सौन्दर्यबोध उत्पन्न करते हैं। इससे व्यक्ति प्रकृति, समाज तथा जीवन के विविध पक्षों को अधिक गहराई और संवेदनशीलता से देखने लगता है।

3. भाषा का विकास

श्रेष्ठ काव्य भाषा को समृद्ध बनाता है। नए शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों और अभिव्यक्ति के नए रूपों का विकास काव्य के माध्यम से होता है। यही कारण है कि हिन्दी भाषा के विकास में कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

4. सांस्कृतिक संरक्षण

काव्य भारतीय संस्कृति, परम्पराओं, धार्मिक मान्यताओं, लोकजीवन तथा ऐतिहासिक घटनाओं का संरक्षण करता है। अनेक सांस्कृतिक मूल्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी काव्य के माध्यम से ही सुरक्षित रहे हैं।

6. मनोरंजन एवं मानसिक शांति

काव्य का एक प्रमुख उद्देश्य स्वस्थ मनोरंजन भी है। मधुर भाषा, लयात्मकता तथा रसात्मकता पाठक को मानसिक आनंद प्रदान करती है तथा तनाव को कम करने में सहायता करती है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में काव्य-तत्त्वों की प्रासंगिकता

आज का युग विज्ञान, तकनीक और तीव्र गति का युग है। फिर भी काव्य और उसके तत्त्वों का महत्त्व कम नहीं हुआ है। आधुनिक साहित्य में भी भाव, कल्पना, भाषा, रस तथा अलंकार का प्रयोग निरन्तर हो रहा है।

वर्तमान समय के कवि सामाजिक असमानता, पर्यावरण संरक्षण, नारी सशक्तिकरण, लोकतंत्र, मानवाधिकार, वैश्वीकरण तथा तकनीकी परिवर्तन जैसे विषयों को काव्य के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि काव्य-तत्त्व आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने प्राचीन काल में थे।

डिजिटल युग में कविता सोशल मीडिया, ब्लॉग, ऑनलाइन पत्रिकाओं तथा विभिन्न मंचों के माध्यम से व्यापक रूप से पाठकों तक पहुँच रही है। इससे काव्य की लोकप्रियता और उपयोगिता दोनों में वृद्धि हुई है।

उदाहरण सहित काव्य-तत्त्वों का विवेचन

कबीर का दोहा

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।

जो मन खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।"

विश्लेषण

भाव - आत्मचिंतन एवं विनम्रता।

बुद्धि - गहन जीवन-दर्शन।

भाषा - सरल एवं सहज।

रस - शांत रस की अनुभूति।

अलंकार - अर्थ की प्रभावशीलता।

छंद - दोहा छंद।

6.3 Further Main Body of the Text

6.3.1 भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि से काव्य-तत्त्वों का विवेचन

पिछले भाग में हमने काव्य-तत्त्वों के स्वरूप, महत्त्व तथा उपयोगिता का अध्ययन किया। अब भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की दृष्टि से काव्य-तत्त्वों का अध्ययन करेंगे।

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य-तत्त्व

भारतीय काव्यशास्त्र विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध साहित्यिक परम्पराओं में से एक है। संस्कृत आचार्यों ने काव्य के स्वरूप, उद्देश्य तथा तत्त्वों का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि श्रेष्ठ काव्य केवल शब्दों का समूह नहीं, बल्कि भाव, रस, सौन्दर्य तथा कलात्मक अभिव्यक्ति का समन्वित रूप है।

भारतीय काव्यशास्त्र में अनेक सम्प्रदाय विकसित हुए, जिनमें प्रमुख हैं–

1. रस सम्प्रदाय

रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरतमुनि माने जाते हैं। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में रस को काव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना।

भरतमुनि के अनुसार जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव मिलकर सहृदय के हृदय में आनन्द उत्पन्न करते हैं, तब रस की निष्पत्ति होती है। इसलिए रस को काव्य की आत्मा कहा गया है।

महत्त्व

काव्य में आनन्द की अनुभूति कराता है।

पाठक को भाव-जगत से जोड़ता है।

काव्य को जीवंत और प्रभावशाली बनाता है।

2. अलंकार सम्प्रदाय

अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य भामह और दण्डी हैं।

इनके अनुसार अलंकार काव्य का प्रमुख तत्त्व है। जैसे आभूषण शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, वैसे ही अलंकार काव्य की शोभा में वृद्धि करते हैं।

हालाँकि बाद के आचार्यों ने यह भी स्पष्ट किया कि केवल अलंकारों से ही श्रेष्ठ काव्य नहीं बनता; भाव और रस भी समान रूप से आवश्यक हैं।

3. रीति सम्प्रदाय

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन माने जाते हैं।

उन्होंने कहा–

"रीतिरात्मा काव्यस्य।"

अर्थात रीति (शैली) ही काव्य की आत्मा है।

वामन के अनुसार भाषा की विशिष्ट शैली ही काव्य को प्रभावशाली बनाती है। प्रत्येक महान कवि की अपनी अलग शैली होती है, जो उसे अन्य कवियों से अलग पहचान देती है।

4. ध्वनि सम्प्रदाय

ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक आनन्दवर्धन हैं।

उनके अनुसार श्रेष्ठ काव्य वही है जिसमें प्रत्यक्ष अर्थ के अतिरिक्त कोई गूढ़ या व्यंजित अर्थ भी निहित हो।

ध्वनि के कारण काव्य का सौन्दर्य बढ़ता है तथा पाठक को गहन चिंतन का अवसर मिलता है।

6.3.2 पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य-तत्त्वों की अवधारणा

पिछले भाग में भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदायों का अध्ययन किया गया। अब पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य-तत्त्वों की अवधारणा तथा भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि के तुलनात्मक अध्ययन को समझेंगे।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य-तत्त्वों की अवधारणा

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विकास मुख्यतः यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ। पश्चिमी विद्वानों ने काव्य को जीवन, प्रकृति और मानव अनुभव की कलात्मक अभिव्यक्ति माना है। उन्होंने काव्य में कल्पना, अनुकरण (Imitation), सौन्दर्य, भाव और भाषा को विशेष महत्त्व दिया।

1. प्लेटो (Plato) का मत

प्लेटो ने काव्य को अनुकरण (Imitation) माना। उनके अनुसार संसार स्वयं आदर्श सत्य का अनुकरण है और काव्य संसार का अनुकरण करता है। इसलिए उन्होंने काव्य को सत्य से कुछ दूर माना।

यद्यपि प्लेटो ने काव्य की आलोचना की, फिर भी उन्होंने यह स्वीकार किया कि काव्य मनुष्य की भावनाओं को प्रभावित करने की शक्ति रखता है।

2. अरस्तू (Aristotle) का मत

अरस्तू ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'Poetics' में काव्य का विस्तृत विवेचन किया।

उनके अनुसार काव्य जीवन का सृजनात्मक अनुकरण है। उन्होंने काव्य को केवल नकल नहीं माना, बल्कि रचनात्मक पुनर्सृजन माना।

अरस्तू ने कथानक, चरित्र, विचार, भाषा, संगीत और दृश्य-विधान को काव्य के महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना।

उन्होंने कैथार्सिस (Catharsis) अर्थात् भावों के परिष्कार का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया। उनके अनुसार त्रासदी के माध्यम से दर्शकों के मन में करुणा और भय का परिष्कार होता है।

3. विलियम वर्ड्सवर्थ (William Wordsworth) का मत

वर्ड्सवर्थ ने कविता को–

"Powerful feelings ka spontaneous overflow"

अर्थात् "प्रबल भावनाओं का स्वाभाविक उच्छ्वास" कहा है।

उनके अनुसार कविता का जन्म कवि के हृदय में संचित भावनाओं से होता है, जिन्हें वह शांत वातावरण में स्मरण करके अभिव्यक्त करता है।

उन्होंने सरल भाषा तथा प्रकृति-चित्रण को विशेष महत्त्व दिया।

4. सैमुअल टेलर कॉलरिज (S. T. Coleridge)

कॉलरिज ने काव्य में कल्पना (Imagination) को सर्वोच्च स्थान दिया।

उनके अनुसार कल्पना वह सृजनात्मक शक्ति है जो साधारण अनुभवों को असाधारण सौन्दर्य प्रदान करती है।

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय काव्यशास्त्र पाश्चात्य काव्यशास्त्र

रस को काव्य की आत्मा माना गया। अनुकरण, कल्पना और जीवन-चित्रण पर बल दिया गया।

भाव एवं सौन्दर्य की प्रधानता।

यथार्थ एवं मानव अनुभव की प्रधानता।

लोकमंगल एवं आनन्द पर बल।

जीवन की व्याख्या एवं कलात्मक अभिव्यक्ति पर बल।

रस, ध्वनि, रीति एवं अलंकार का विकास।

कथानक, चरित्र, कल्पना एवं शैली पर विशेष ध्यान।

आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण। दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में काव्य-तत्त्वों का स्वरूप

आधुनिक हिन्दी कविता में पारम्परिक काव्य-तत्त्वों के साथ-साथ नए विषयों और अभिव्यक्ति-शैलियों का भी समावेश हुआ है। आधुनिक कवियों ने सामाजिक विषमता, राष्ट्रीय चेतना, नारी विमर्श, पर्यावरण, लोकतंत्र, वैश्वीकरण तथा मानवीय संघर्षों को अपने काव्य का विषय बनाया।

यद्यपि आधुनिक कविता में मुक्त छंद का व्यापक प्रयोग हुआ है, फिर भी भाव, भाषा, कल्पना, रस और कलात्मकता आज भी श्रेष्ठ कविता के मूल आधार बने हुए हैं।

6.3.3 काव्य-तत्त्वों की समकालीन प्रासंगिकता, आलोचनात्मक मूल्यांकन

पिछले भागों में हमने काव्य के तत्त्वों, उनके स्वरूप, महत्त्व तथा भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण का अध्ययन किया। अब वर्तमान समय में काव्य-तत्त्वों की प्रासंगिकता तथा उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा रहा है।

समकालीन संदर्भ में काव्य-तत्त्वों की प्रासंगिकता

वर्तमान युग विज्ञान, तकनीक और सूचना क्रांति का युग है। जीवन की गति अत्यंत तीव्र हो गई है तथा मनुष्य अनेक सामाजिक, आर्थिक और मानसिक चुनौतियों का सामना कर रहा है। ऐसे समय में काव्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि संवेदनशीलता, मानवीय मूल्यों और सामाजिक चेतना का प्रभावी माध्यम बन गया है।

आज भी श्रेष्ठ कविता वही मानी जाती है जिसमें भावों की गहराई, भाषा की सहजता, कल्पना की नवीनता तथा विचारों की सार्थकता का संतुलित समन्वय हो। इसलिए काव्य-तत्त्वों का महत्त्व आज भी उतना ही है जितना प्राचीन काल में था।

1. मानवीय संवेदनाओं के संरक्षण में भूमिका

आधुनिक जीवन की व्यस्तता और भौतिकता के कारण मानवीय संवेदनाएँ प्रभावित हो रही हैं। काव्य मनुष्य के भीतर प्रेम, करुणा, सहानुभूति, दया और भाईचारे की भावना को जागृत करता है।

जब कोई व्यक्ति कविता पढ़ता है, तो वह दूसरों के सुख-दुःख को अनुभव करने लगता है। इस प्रकार काव्य समाज में मानवीय मूल्यों की रक्षा करता है।

2. सामाजिक चेतना का विकास

आधुनिक कवि केवल प्रकृति या प्रेम का चित्रण नहीं करते, बल्कि समाज की समस्याओं को भी अपनी रचनाओं में स्थान देते हैं। भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, लैंगिक असमानता, जातिवाद, पर्यावरण प्रदूषण, युद्ध तथा आतंकवाद जैसे विषय आधुनिक कविता में प्रमुखता से व्यक्त किए जाते हैं।

इस प्रकार काव्य समाज को जागरूक करने तथा सकारात्मक परिवर्तन की प्रेरणा देने का कार्य करता है।

3. सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण

काव्य भारतीय संस्कृति, परम्पराओं, लोकजीवन तथा राष्ट्रीय मूल्यों का संवाहक है। आधुनिक समय में वैश्वीकरण के कारण अनेक सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं, किन्तु काव्य आज भी भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने का महत्वपूर्ण माध्यम बना हुआ है।

तुलसीदास, सूरदास, कबीर, रहीम, मैथिलीशरण गुप्त तथा दिनकर जैसे कवियों की रचनाएँ आज भी सांस्कृतिक चेतना को सुदृढ़ करती हैं।

4. भाषा के विकास में योगदान

काव्य भाषा को समृद्ध, प्रभावशाली तथा सौन्दर्यपूर्ण बनाता है। नए शब्दों, प्रतीकों, बिम्बों तथा अभिव्यक्ति के नए रूपों का विकास कविता के माध्यम से होता है।

आधुनिक हिन्दी कविता ने भाषा को अधिक सरल, संप्रेषणीय तथा जनसामान्य के निकट बनाया है।

5. शिक्षा एवं व्यक्तित्व विकास में योगदान

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में काव्य का अध्ययन विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे उनकी भाषा-शक्ति, कल्पनाशक्ति, चिंतन-क्षमता तथा अभिव्यक्ति-कौशल का विकास होता है।

कविता के अध्ययन से विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों, सौन्दर्यबोध तथा रचनात्मक सोच का भी विकास होता है।

6.3.4 काव्य-तत्त्वों का समग्र मूल्यांकन, निष्कर्ष

पिछले भाग में काव्य-तत्त्वों की समकालीन प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया। अब काव्य-तत्त्वों का समग्र मूल्यांकन, उनकी सीमाएँ तथा अध्याय का निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

काव्य-तत्त्वों का समग्र मूल्यांकन

काव्य के तत्त्व किसी भी साहित्यिक रचना के आधारभूत अंग हैं। प्रत्येक तत्त्व का अपना स्वतंत्र महत्त्व है, परन्तु इनकी वास्तविक शक्ति इनके समन्वित रूप में निहित है। जिस प्रकार मानव शरीर के सभी अंग मिलकर उसे पूर्ण बनाते हैं, उसी प्रकार भाव, कल्पना, बुद्धि, भाषा, रस, अलंकार और छंद मिलकर काव्य को पूर्णता प्रदान करते हैं।

काव्य-तत्त्वों का समुचित संतुलन ही किसी रचना को प्रभावशाली, कलात्मक तथा कालजयी बनाता है। यदि किसी रचना में केवल शब्दों का सौन्दर्य हो, परन्तु भावों की गहराई न हो, तो वह पाठक के मन पर स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ सकती। इसी प्रकार केवल गहन विचार होने पर भी यदि भाषा जटिल हो, तो काव्य की संप्रेषणीयता कम हो जाती है।

इस प्रकार श्रेष्ठ काव्य के लिए सभी तत्त्वों का संतुलित एवं स्वाभाविक प्रयोग आवश्यक है।

आधुनिक हिन्दी कविता और काव्य-तत्त्व

आधुनिक हिन्दी कविता में पारम्परिक काव्य-तत्त्वों का स्वरूप कुछ परिवर्तित अवश्य हुआ है, किन्तु उनका महत्त्व कम नहीं हुआ है।

मुक्त छंद के विकास के कारण छंद के पारम्परिक नियमों में लचीलापन आया है, परन्तु कविता में लय आज भी आवश्यक मानी जाती है। इसी प्रकार आधुनिक कविता में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में किया जाता है।

आज के कवि सामाजिक यथार्थ, लोकतंत्र, पर्यावरण, स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, वैश्वीकरण तथा मानवीय संघर्षों को अपने काव्य का विषय बनाते हैं। इसके बावजूद भाव, भाषा, कल्पना तथा रस आज भी श्रेष्ठ कविता के मूल आधार बने हुए हैं।

6.4 प्रगति जाँचें (Check Your Progress)

इस भाग का उद्देश्य यह जाँचना है कि आपने इस पाठ की विषय-वस्तु को किस सीमा तक समझा है। नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर स्वयं लिखने का प्रयास करें।

(क) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. 'काव्य' शब्द किस भाषा से लिया गया है?

(अ) हिन्दी

(ब) संस्कृत

(स) प्राकृत

(द) अपभ्रंश

2. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" किस आचार्य का कथन है?

(अ) भामह

(ब) मम्मट

(स) विश्वनाथ

(द) दण्डी

3. काव्य की आत्मा किसे माना गया है?

(अ) भाषा

(ब) रस

(स) अलंकार

(द) छंद

4. रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?

(अ) आनन्दवर्धन

(ब) वामन

(स) कुन्तक

(द) भरतमुनि

5. ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं–

(अ) भामह

(ब) दण्डी

(स) आनन्दवर्धन

(द) मम्मट

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. रस को काव्य की _____ कहा गया है।

2. काव्य में भाषा उसका _____ मानी जाती है।

3. अलंकार काव्य की _____ बढ़ाते हैं।

4. कल्पना काव्य में _____ उत्पन्न करती है।

5. भरतमुनि _____ सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं।

(ग) सत्य / असत्य लिखिए

1. केवल अलंकारों से श्रेष्ठ काव्य की रचना हो जाती है। ( )

2. रस पाठक को काव्यानन्द प्रदान करता है। ( )

3. आधुनिक कविता में काव्य-तत्त्वों का महत्त्व समाप्त हो गया है। ( )

4. भाषा और शैली काव्य की प्रभावशीलता बढ़ाते हैं। ( )

5. काव्य समाज और संस्कृति का दर्पण है। ( )

(घ) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. काव्य से आप क्या समझते हैं?

2. काव्य के प्रमुख तत्त्वों के नाम लिखिए।

3. भाव तत्त्व का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

4. रस को काव्य की आत्मा क्यों कहा जाता है?

5. अलंकार का अर्थ एवं महत्त्व लिखिए।

6. छंद से क्या अभिप्राय है?

7. कल्पना तत्त्व की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

8. भाषा-शैली काव्य को किस प्रकार प्रभावशाली बनाती है?

(ङ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. काव्य के तत्त्वों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।

2. काव्य-तत्त्वों के पारस्परिक संबंध को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

3. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य-तत्त्वों की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

4. आधुनिक युग में काव्य-तत्त्वों की प्रासंगिकता का विवेचन कीजिए।

5. काव्य के प्रमुख तत्त्वों का समालोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत कीजिए।

(च) विचारात्मक प्रश्न (Analytical Questions

1. क्या आप मानते हैं कि बिना भाव के श्रेष्ठ काव्य की रचना संभव है? अपने विचार लिखिए।

2. यदि काव्य में अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग हो, तो उसका क्या प्रभाव पड़ता है?

3. वर्तमान समय में मुक्त छंद के बढ़ते प्रयोग के बावजूद छंद का महत्त्व क्यों बना हुआ है?

4. *आपके मत में काव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व कौन-सा है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।*

6.5 सारांश (Summary)

काव्य मानव के हृदय की अनुभूतियों, भावनाओं, विचारों तथा कल्पनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। यह केवल शब्दों का समूह नहीं, बल्कि जीवन, समाज और संस्कृति का सजीव चित्रण है। काव्य मनुष्य के आन्तरिक भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि वे पाठक या श्रोता के हृदय में आनंद, संवेदना और सौन्दर्यबोध उत्पन्न करते हैं। इसी कारण काव्य को साहित्य की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधा माना गया है।

भारतीय काव्यशास्त्र में भामह, दण्डी, मम्मट, विश्वनाथ तथा अन्य आचार्यों ने काव्य के स्वरूप और उसके तत्त्वों का विस्तृत विवेचन किया है। भामह ने शब्द और अर्थ के समन्वय को काव्य का आधार माना, मम्मट ने दोषरहित एवं गुणयुक्त शब्दार्थ को श्रेष्ठ काव्य कहा तथा विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया। आधुनिक हिन्दी आलोचकों ने भी काव्य को मानव जीवन की संवेदनाओं की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति माना है।

इस पाठ में काव्य के प्रमुख तत्त्वों का विस्तार से अध्ययन किया गया। इनमें भाव, कल्पना, बुद्धि, भाषा-शैली, रस, अलंकार तथा छंद को प्रमुख तत्त्व माना गया है। भाव काव्य का प्राण है, क्योंकि उसी के माध्यम से कवि की अनुभूतियाँ व्यक्त होती हैं। कल्पना साधारण विषयों को भी कलात्मक एवं आकर्षक बना देती है। बुद्धि काव्य को विचारों की गंभीरता प्रदान करती है। भाषा एवं शैली भावों को प्रभावशाली रूप में पाठक तक पहुँचाने का कार्य करती हैं। रस पाठक को काव्यानन्द प्रदान करता है, अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं तथा छंद काव्य में लय, संगीतात्मकता और प्रवाह उत्पन्न करता है।

काव्य के सभी तत्त्व एक-दूसरे के पूरक हैं। किसी एक तत्त्व की प्रधानता तथा दूसरे की उपेक्षा काव्य की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। श्रेष्ठ काव्य वही है जिसमें भावों की गहराई, कल्पना की नवीनता, विचारों की परिपक्वता, भाषा की सरलता, रस की प्रभावशीलता, अलंकारों का संतुलित प्रयोग तथा छंद की लयात्मकता का समन्वय हो।

इस पाठ में भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की दृष्टि से भी काव्य-तत्त्वों का अध्ययन किया गया। भारतीय आचार्यों ने रस, ध्वनि, रीति, अलंकार तथा वक्रोक्ति जैसे सिद्धान्तों के माध्यम से काव्य के सौन्दर्य का विश्लेषण किया, जबकि पाश्चात्य विद्वानों—प्लेटो, अरस्तू, वर्ड्सवर्थ तथा कॉलरिज—ने अनुकरण, कल्पना, जीवनानुभव तथा भावात्मक अभिव्यक्ति को विशेष महत्त्व दिया। दोनों परम्पराओं का उद्देश्य उत्कृष्ट एवं प्रभावशाली साहित्य की रचना है।

आधुनिक युग में भी काव्य-तत्त्वों का महत्त्व बना हुआ है। वर्तमान समय के कवि सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता, पर्यावरण, स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, मानवीय अधिकार तथा वैश्विक समस्याओं को अपनी कविताओं का विषय बना रहे हैं। मुक्त छंद के प्रचलन के बावजूद भाषा, भाव, कल्पना और रस आज भी श्रेष्ठ कविता की पहचान बने हुए हैं। इसलिए काव्य-तत्त्व केवल प्राचीन साहित्य तक सीमित नहीं हैं, बल्कि आधुनिक साहित्य में भी समान रूप से प्रासंगिक हैं।

विद्यार्थियों के लिए काव्य-तत्त्वों का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। इससे साहित्यिक सौन्दर्य की समझ विकसित होती है, विभिन्न कवियों की शैली का ज्ञान प्राप्त होता है, आलोचनात्मक दृष्टि विकसित होती है तथा उत्तर-लेखन की क्षमता में वृद्धि होती है। इसके साथ ही विद्यार्थियों में भाषा-कौशल, कल्पनाशक्ति, संवेदनशीलता तथा रचनात्मक चिंतन का भी विकास होता है।

6.6 मुख्य शब्द (Keywords)

इस पाठ में प्रयुक्त प्रमुख शब्दों का सरल अर्थ नीचे दिया गया है। इन शब्दों को समझने से पाठ की विषयवस्तु को समझना अधिक सरल हो जाता है।

. काव्य - मानव के भावों, विचारों और कल्पनाओं की कलात्मक एवं प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति को काव्य कहते हैं।

. काव्य-तत्त्व - वे आधारभूत अंग जिनके समन्वय से श्रेष्ठ काव्य का निर्माण होता है, काव्य-तत्त्व कहलाते हैं।

भाव - कवि के हृदय में उत्पन्न होने वाली अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ और मनोविकार भाव कहलाते हैं।

. कल्पना - वह सृजनात्मक शक्ति जिसके द्वारा कवि साधारण विषयों को भी नवीन, आकर्षक और कलात्मक रूप प्रदान करता है।

. बुद्धि - विवेक, तर्क, चिंतन तथा विचार-शक्ति को बुद्धि कहते हैं। यह काव्य को गंभीरता और उद्देश्य प्रदान करती है।

शैली - किसी कवि द्वारा अपने भावों और विचारों को प्रस्तुत करने का विशिष्ट ढंग शैली कहलाता है।

. छंद - वर्णों या मात्राओं के निश्चित नियमों पर आधारित पद्य-रचना की पद्धति को छंद कहते हैं।

. लय - शब्दों की नियमित गति एवं संगीतात्मक प्रवाह को लय कहते हैं।

. रीति - काव्य की विशिष्ट भाषा-शैली अथवा अभिव्यक्ति का ढंग रीति कहलाता है।

. ध्वनि - काव्य में प्रत्यक्ष अर्थ के अतिरिक्त निहित गूढ़ या व्यंजित अर्थ को ध्वनि कहते हैं।

. वक्रोक्ति - साधारण बात को कलात्मक, चमत्कारपूर्ण एवं विशिष्ट ढंग से कहना वक्रोक्ति कहलाता है।

. कैथार्सिस (Catharsis) - अरस्तू के अनुसार करुणा और भय जैसे भावों के माध्यम से मन का परिष्कार कैथार्सिस कहलाता है।

समन्वय - विभिन्न तत्त्वों का संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण मेल समन्वय कहलाता है।

6.7 स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment Test)

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देकर अपनी समझ का मूल्यांकन कर सकते हैं।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. काव्य किसे कहते हैं?

2. काव्य के दो प्रमुख तत्त्वों के नाम लिखिए।

3. काव्य की आत्मा किसे कहा गया है?

4. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" किसका कथन है?

5. अलंकार का शाब्दिक अर्थ क्या है?

6. छंद का मुख्य उद्देश्य क्या है?

7. कल्पना तत्त्व का क्या महत्त्व है?

8. रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?

9. ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?

10. सहृदय किसे कहते हैं?

(ब) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. काव्य की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप का वर्णन कीजिए।

2. भाव तत्त्व का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

3. भाषा और शैली का काव्य में क्या स्थान है?

4. रस को काव्य की आत्मा क्यों कहा गया है?

5. अलंकार और छंद में क्या अंतर है?

6. कल्पना और बुद्धि तत्त्व का पारस्परिक संबंध स्पष्ट कीजिए।

7. भारतीय काव्यशास्त्र की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

8. पाश्चात्य काव्यशास्त्र की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(स) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. काव्य के प्रमुख तत्त्वों का विस्तृत विवेचन उदाहरण सहित कीजिए।

2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

3. काव्य-तत्त्वों के पारस्परिक संबंध को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कीजिए।

4. आधुनिक युग में काव्य-तत्त्वों की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

5. काव्य के तत्त्वों का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

(द) विश्लेषणात्मक / चिंतनात्मक प्रश्न

1. क्या रस के बिना श्रेष्ठ काव्य की कल्पना की जा सकती है? अपने विचार तर्क सहित लिखिए।

2. आधुनिक मुक्त छंद कविता में भी काव्य-तत्त्वों का महत्त्व क्यों बना हुआ है? स्पष्ट कीजिए।

3. आपके मत में काव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व कौन-सा है? कारण सहित उत्तर दीजिए।

4. यदि किसी काव्य में भाषा अत्यंत कठिन हो, तो उसका पाठकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

6.8 प्रगति जाँचें के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

इस भाग में 6.4 प्रगति जाँचें में दिए गए प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत किए जा रहे हैं। विद्यार्थी पहले स्वयं उत्तर लिखने का प्रयास करें, उसके बाद इन उत्तरों से उनका मिलान करें।

(क) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. 'काव्य' शब्द किस भाषा से लिया गया है?

उत्तर: (ब) संस्कृत

2. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" किस आचार्य का कथन है?

उत्तर: (स) विश्वनाथ

3. काव्य की आत्मा किसे माना गया है?

उत्तर: (ब) रस

4. रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?

उत्तर: (ब) वामन

5. ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं–

उत्तर: (स) आनन्दवर्धन

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. रस को काव्य की आत्मा कहा गया है।

2. काव्य में भाषा उसका शरीर मानी जाती है।

3. अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं।

4. कल्पना काव्य में नवीनता एवं सौन्दर्य उत्पन्न करती है।

5. भरतमुनि रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं।

(ग) सत्य / असत्य

1. केवल अलंकारों से श्रेष्ठ काव्य की रचना हो जाती है।

उत्तर: असत्य

2. रस पाठक को काव्यानन्द प्रदान करता है।

उत्तर: सत्य

3. आधुनिक कविता में काव्य-तत्त्वों का महत्त्व समाप्त हो गया है।

उत्तर: असत्य

4. भाषा और शैली काव्य की प्रभावशीलता बढ़ाते हैं।

उत्तर: सत्य

5. काव्य समाज और संस्कृति का दर्पण है।

उत्तर: सत्य

(घ) लघु उत्तरीय प्रश्नों के संकेतात्मक उत्तर

1. काव्य क्या है?

काव्य मानव की भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं की कलात्मक एवं प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति है।

2. काव्य के प्रमुख तत्त्व कौन-कौन से हैं?

भाव, कल्पना, बुद्धि, भाषा-शैली, रस, अलंकार तथा छंद।

3. भाव तत्त्व का क्या महत्त्व है?

भाव काव्य का प्राण है। इसके बिना काव्य पाठक के हृदय को प्रभावित नहीं कर सकता।

4. रस को काव्य की आत्मा क्यों कहा जाता है?

क्योंकि रस ही पाठक को काव्यानन्द प्रदान करता है और काव्य को प्रभावशाली बनाता है।

5. अलंकार का क्या महत्त्व है

अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं तथा भाषा को अधिक प्रभावपूर्ण और आकर्षक बनाते हैं।

6. छंद से क्या अभिप्राय है

वर्णों या मात्राओं के निश्चित नियमों के अनुसार की गई पद्य-रचना को छंद कहते हैं।

7. कल्पना तत्त्व की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

कल्पना साधारण विषयों को भी नवीन, आकर्षक और कलात्मक रूप प्रदान करती है तथा काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न करती है।

8. भाषा-शैली का काव्य में क्या महत्त्व है?

भाषा-शैली भावों को सरल, स्पष्ट, प्रभावशाली तथा कलात्मक रूप से पाठक तक पहुँचाती है।

अध्ययन हेतु सुझाव

प्रत्येक काव्य-तत्त्व की परिभाषा याद रखें।

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रमुख आचार्यों के नाम और उनके सिद्धान्तों का अभ्यास करें।

उदाहरणों सहित उत्तर लिखने का अभ्यास करें।

परीक्षा में उत्तर लिखते समय उपयुक्त शीर्षक और उपशीर्षकों का प्रयोग करें।

6.9 संदर्भ ग्रंथ (References / Suggested Readings)

इस पाठ की तैयारी एवं विषय की गहन समझ के लिए निम्नलिखित ग्रंथों का अध्ययन उपयोगी होगा–

सन्दर्भ ग्रंथ (हिन्दी)

1. डॉ. नगेन्द्र - भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

3. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. डॉ. बच्चन सिंह - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।

5. डॉ. रामविलास शर्मा - साहित्य : सिद्धान्त और समीक्षा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

6. डॉ. नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

7. डॉ. सत्यदेव चौधरी - भारतीय काव्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

8. डॉ. भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

संस्कृत ग्रंथ

1. भरतमुनि - नाट्यशास्त्र

2. भामह - काव्यालंकार।

3. दण्डी - काव्यादर्श।

4. वामन - काव्यालंकार सूत्रवृत्ति।

5. आनन्दवर्धन - ध्वन्यालोक।

6. मम्मट - काव्यप्रकाश।

7. विश्वनाथ - साहित्यदर्पण।

8. कुन्तक - वक्रोक्तिजीवितम्।

कोर्स कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या : 7	Vetter : Dr. कमलेश देवी
इकाई -3 रस का स्वरुप , अवयव भेद तथा रस निष्पत्ति	

7 - रस का स्वरूप, अवयव, भेद और रस-निष्पत्ति

7.0 अधिगम उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

.7.2 पाठ का मुख्य भाग

.7.2.1 रस का अर्थ

7.2.2 रस का स्वरूप

7.2.3 रस और भाव का संबंध

7.2.4 रस की प्रमुख विशेषताएँ

7.2.5 रस के अवयव

7.3. पाठ के आगे का मुख्य भाग

7.3.1 रस के भेद

7.3.2 नौ रसों का तुलनात्मक विवेचन

7.3.3 रसों की पहचान कैसे करें?

7.4 अपनी प्रगति जाँचें

7.5 सारांश

7.6 मुख्य शब्द एवं अर्थ

7.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

7.8 अपनी प्रगति जाँचें के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 अधिगम उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद विद्यार्थी–

. रस की संकल्पना, अर्थ और साहित्यिक महत्त्व को समझ सकेंगे।

. रस के स्वरूप तथा उसकी प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

रस के विभिन्न अवयवों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

. स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के पारस्परिक संबंध को समझ सकेंगे।

रस के विभिन्न भेदों का क्रमबद्ध अध्ययन कर सकेंगे।

श्रृंगार रस के स्वरूप तथा उसके संयोग और वियोग पक्ष को समझ सकेंगे।
हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत रस की विशेषताओं को पहचान सकेंगे।

विभिन्न रसों के स्थायी भावों को याद रख सकेंगे।

. वीर रस के प्रमुख रूपों को समझ सकेंगे।

. साहित्यिक उदाहरणों में रस की पहचान कर सकेंगे।

. रस और भाव के अंतर को समझ सकेंगे।

. रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया को सरल रूप में समझ सकेंगे।

काव्य के सौंदर्य और प्रभाव में रस की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

मनुष्य भावनाओं से युक्त प्राणी है। उसके जीवन में प्रेम, हँसी, दुःख, क्रोध, उत्साह, भय, आश्चर्य और शांति जैसे अनेक भाव निरंतर आते-जाते रहते हैं। साहित्य इन्हीं मानवीय भावनाओं को कलात्मक रूप प्रदान करता है। जब किसी रचना में भावों की ऐसी कलात्मक अभिव्यक्ति होती है कि पाठक या श्रोता के मन में एक विशेष प्रकार की आनंदपूर्ण अथवा सौंदर्यात्मक अनुभूति उत्पन्न होती है, तब उस अनुभूति को रस कहा जाता है।

भारतीय काव्यशास्त्र की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में रस-सिद्धांत का स्थान अत्यंत ऊँचा है। भारतीय आचार्यों ने काव्य के अनेक तत्वों पर विचार किया, लेकिन रस को काव्य की प्रभावशीलता और सौंदर्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण आधार माना। साहित्य में केवल शब्दों का सुंदर विन्यास पर्याप्त नहीं होता। उसमें भावात्मक शक्ति भी होनी चाहिए। वही भावात्मक शक्ति पाठक के मन को प्रभावित करके उसे रचना से जोड़ती है।

कल्पना कीजिए कि किसी कविता में एक सैनिक देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की चिंता किए बिना युद्धभूमि में आगे बढ़ता है। उस प्रसंग को पढ़कर पाठक के मन में साहस, उत्साह और पराक्रम की भावना जागती है। यहाँ वीर रस की अनुभूति होती है।

इसी प्रकार यदि किसी कविता में प्रिय व्यक्ति के वियोग की पीड़ा व्यक्त की गई है और उसे पढ़कर पाठक के मन में गहरी संवेदना उत्पन्न होती है, तो वहाँ करुण रस की अनुभूति हो सकती है। यदि किसी रचना में प्रेम और सौंदर्य की अनुभूति प्रमुख है, तो वहाँ श्रृंगार रस की प्रधानता होगी।

इस प्रकार रस का संबंध केवल विषय से नहीं, बल्कि उस विषय की कलात्मक अभिव्यक्ति और पाठक की भावात्मक अनुभूति से भी है।

भारतीय काव्यशास्त्र में रस का व्यवस्थित विवेचन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। बाद के आचार्यों ने रस की अवधारणा को अलग-अलग दृष्टियों से समझाया और विकसित किया। इस परंपरा के कारण भारतीय काव्यशास्त्र में रस-सिद्धांत का एक विस्तृत और समृद्ध स्वरूप विकसित हुआ।

इस पाठ में हम रस के अर्थ और स्वरूप के साथ-साथ उसके अवयवों तथा विभिन्न भेदों का अध्ययन करेंगे। विशेष ध्यान नौ प्रमुख रसों पर दिया जाएगा, क्योंकि साहित्य के अध्ययन में इनकी पहचान और विशेषताओं को समझना अत्यंत आवश्यक है।

7.2 पाठ का मुख्य भाग

.7.2.1 रस का अर्थ

'रस' शब्द संस्कृत की 'रस्' धातु से संबंधित माना जाता है। सामान्य अर्थ में रस का संबंध स्वाद, आनंद और आस्वादन से है।

जैसे किसी फल को खाने पर उसका स्वाद अनुभव किया जाता है, उसी प्रकार साहित्यिक रचना को पढ़ने या सुनने पर उससे उत्पन्न भावात्मक आनंद का अनुभव होता है। साहित्य के इसी कलात्मक आस्वाद को रस कहा जाता है।

हालाँकि साहित्य का रस वास्तविक जीवन के भौतिक स्वाद के समान नहीं है। साहित्यिक रस मानसिक और सौंदर्यात्मक अनुभव है।

उदाहरण के लिए–

यदि कोई व्यक्ति वास्तविक जीवन में दुःख का अनुभव करता है, तो वह उसका निजी अनुभव है। लेकिन किसी कविता या कहानी में किसी पात्र के दुःख का कलात्मक चित्रण पढ़कर पाठक के मन में जो करुण अनुभूति उत्पन्न होती है, वह करुण रस है।

अर्थात्–

व्यक्तिगत भाव → कलात्मक अभिव्यक्ति → सहृदय द्वारा आस्वादन → रसात्मक अनुभूति

यह रस की मूल प्रक्रिया को समझने का सरल तरीका है।

7.2.2 रस का स्वरूप

रस का स्वरूप समझने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि रस केवल भाव नहीं है। भाव और रस में अंतर है।

भाव मन की एक अवस्था है, जबकि रस उस भाव के कलात्मक रूप से प्रस्तुत होने और सहृदय द्वारा उसका आस्वादन करने से उत्पन्न सौंदर्यात्मक अनुभूति है

उदाहरण के लिए, किसी पात्र के मन में प्रेम की भावना होना 'रति' है। जब साहित्यकार उस प्रेम को उचित पात्रों, परिस्थितियों, वातावरण, व्यवहार और भाषा के माध्यम से कलात्मक रूप देता है तथा पाठक उसका आनंद लेता है, तब वहाँ श्रृंगार रस की अनुभूति होती है।

इसलिए रस को काव्य की भावात्मक शक्ति भी कहा जा सकता है।

रस के स्वरूप की प्रमुख विशेषताए

1. रस अनुभूति का विषय है।

रस को केवल पढ़कर जानकारी के रूप में नहीं समझा जा सकता। उसका वास्तविक अनुभव साहित्यिक आस्वादन के माध्यम से होता है।

2. रस का आधार भाव है।

बिना भाव के रस की कल्पना नहीं की जा सकती।

3. रस कलात्मक होता है।

साधारण जीवन की भावनाएँ साहित्य में कलात्मक रूप ग्रहण करती हैं।

4. रस सहृदय से संबंधित है।

जिस पाठक में साहित्यिक संवेदनशीलता होती है, वह रस का अधिक प्रभावशाली अनुभव कर सकता है।

5. रस साहित्य को प्रभावशाली बनाता है।

रसयुक्त साहित्य पाठक के मन पर लंबे समय तक प्रभाव डाल सकता है।

6. रस में आनंद का तत्व होता है।

यहाँ आनंद का अर्थ केवल हँसी या प्रसन्नता नहीं है। करुण या भयानक रस भी अपने ढंग का सौंदर्यात्मक आनंद प्रदान करते हैं।

7.2.3 रस और भाव का संबंध

रस और भाव एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं, लेकिन दोनों एक नहीं हैं।

भाव वह मानसिक स्थिति है जो किसी परिस्थिति से उत्पन्न होती है।

रस उस भाव की कलात्मक अभिव्यक्ति और उसके आस्वादन से उत्पन्न होने वाली विशेष अनुभूति है।

इसे उदाहरण से समझें।

किसी व्यक्ति के मन में अपने प्रिय के प्रति प्रेम है। यह रति भाव है। साहित्यकार इस प्रेम को पात्रों, वातावरण, संवाद और व्यवहार के माध्यम से प्रस्तुत करता है। पाठक जब उस प्रस्तुति का कलात्मक अनुभव करता है तो श्रृंगार रस की अनुभूति होती है।

इसी प्रकार–

शोक → करुण रस

क्रोध → रौद्र रस

उत्साह → वीर रस

भय → भयानक रस

विस्मय → अद्भुत रस

आदि संबंधों को समझा जा सकता है।

भाव से रस बनने की सामान्य प्रक्रिया

भाव → कलात्मक अभिव्यक्ति → भाव का परिपाक → रस का आस्वाद

इस प्रकार भाव रस का आधार है, लेकिन रस भाव का मात्र दूसरा नाम नहीं है।

7.2.4 रस की प्रमुख विशेषताएँ

रस की प्रमुख विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. रस काव्य की प्रभावशीलता बढ़ाता है

जिस रचना में भावात्मक शक्ति होती है, वह पाठक को अधिक प्रभावित करती है। रस रचना को केवल सूचना देने वाली सामग्री न बनाकर अनुभव का रूप देता ह

2. रस पाठक को रचना से जोड़ता है

जब पाठक किसी पात्र की स्थिति को अनुभव करने लगता है, तब उसका रचना से भावात्मक संबंध स्थापित हो जाता है।

3. रस सार्वभौमिक अनुभूति का आधार बनता है

किसी कविता में किसी एक व्यक्ति का प्रेम या दुःख व्यक्त हो सकता है, लेकिन पाठक उसमें व्यापक मानवीय अनुभव को पहचान लेता है।

4. रस साहित्य में सौंदर्य उत्पन्न करता है

रस रचना की भावात्मक सुंदरता को बढ़ाता है। इसी कारण साहित्य केवल घटना का विवरण न रहकर कलात्मक अनुभव बन जाता है।

5. रस मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ सकता है

अच्छी साहित्यिक रचना पढ़ने के बाद उसका भाव लंबे समय तक स्मृति में बना रहता है। इसका एक कारण उसकी रसात्मक शक्ति है।

7.2.5 रस के अवयव

रस की निष्पत्ति को समझने के लिए उसके प्रमुख अवयवों को समझना आवश्यक है। सामान्यतः निम्न तत्वों को प्रमुख माना जाता है–

1. स्थायी भाव

2. विभाव

3. अनुभाव

4. संचारी या व्यभिचारी भाव

इनके अतिरिक्त सात्विक भाव भी भावों की अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने में सहायक होते हैं।

(i) स्थायी भाव

जो भाव मनुष्य के भीतर अपेक्षाकृत स्थिर रूप में विद्यमान रहते हैं और अवसर मिलने पर जाग्रत होकर अन्य भावों की सहायता से रस का रूप ग्रहण करते हैं, उन्हें स्थायी भाव कहा जाता है।

प्रमुख रसों और उनके स्थायी भावों का संबंध इस प्रकार है–

रस स्थायी भाव

श्रृंगार रति

हास्य हास

करुण शोक

रौद्र क्रोध

वीर उत्साह

भयानक भय

बीभत्स जुगुप्सा

अद्भुत विस्मय

शांत निर्वेद/शम

स्थायी भाव को रस का मूल आधार कहा जा सकता है।

.(ii) विभाव

जिस कारण, व्यक्ति, वस्तु अथवा परिस्थिति के कारण स्थायी भाव जाग्रत होता है, उसे विभाव कहा जाता है।

विभाव के दो प्रमुख प्रकार हैं–

(क) आलम्बन विभाव

जिस व्यक्ति या वस्तु के कारण भाव उत्पन्न होता है, उसे आलम्बन विभाव कहा जाता है।

उदाहरण के लिए श्रृंगार में प्रिय और प्रियतम आलम्बन हो सकते हैं।

(ख) उद्दीपन विभाव

जो परिस्थितियाँ अथवा वातावरण पहले से उपस्थित भाव को अधिक तीव्र कर देते हैं, उन्हें उद्दीपन विभाव कहा जाता है।

उदाहरण–

चाँदनी रात

सुगंधित पुष्प

सुंदर प्राकृतिक वातावरण

मधुर संगीत

आदि श्रृंगार की स्थिति में उद्दीपन का कार्य कर सकते हैं।

(iii) अनुभाव

स्थायी भाव जाग्रत होने पर शरीर, मुख, वाणी अथवा व्यवहार में जो बाहरी परिवर्तन दिखाई देते हैं, वे अनुभाव कहलाते हैं।

जैसे–

मुस्कराना

आँसू आना

आँखों का बदलना

मुख का लाल होना

कठोर स्वर में बोलना

शरीर की विशेष मुद्रा आदि।

अनुभाव भाव को पाठक या दर्शक के सामने स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करने में सहायता करते हैं।

संचारी या व्यभिचारी भाव

जो भाव थोड़े समय के लिए उत्पन्न होकर स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं और फिर समाप्त हो जाते हैं, उन्हें संचारी या व्यभिचारी भाव कहा जाता है।

इनकी संख्या परंपरा में अधिक मानी गई है। उदाहरण के रूप में–

चिंता, लज्जा, स्मृति, आशंका , उत्सुकता, निराशा, मोह, हर्ष, विषाद, दैन्य आदि को लिया जा सकता है। संचारी भाव स्वयं मुख्य रस नहीं होते, बल्कि मुख्य स्थायी भाव को प्रभावशाली बनाने में सहायता करते हैं।

7.3. पाठ के आगे का मुख्य भाग

7.3.1 रस के भेद

रसों का वर्गीकरण उनके स्थायी भाव के आधार पर किया गया है। परंपरागत रूप से नौ रसों को विशेष महत्त्व प्राप्त है–

1. श्रृंगार रस

2. हास्य रस

3. करुण रस

4. रौद्र रस

5. वीर रस

6. भयानक रस

7. बीभत्स रस

8. अद्‌भुत रस

9. शांत रस

क) श्रृंगार रस

श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है। प्रेम, आकर्षण, अनुराग और सौंदर्य की अनुभूति इसकी मूल संवेदना है।

श्रृंगार को साहित्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण रस माना गया है। हिंदी साहित्य की विभिन्न धाराओं में श्रृंगार के अनेक सुंदर रूप दिखाई देते हैं।

श्रृंगार का क्षेत्र केवल स्त्री-पुरुष प्रेम तक सीमित नहीं है। इसमें सौंदर्य-बोध, अनुराग, आकर्षण, मिलन की प्रसन्नता और वियोग की पीड़ा जैसी अनेक अनुभूतियाँ सम्मिलित हो सकती हैं।

श्रृंगार रस के प्रमुख भेद

श्रृंगार के दो प्रमुख रूप हैं–

i संयोग श्रृंगार

जब प्रेमी और प्रेमिका अथवा प्रिय और प्रियतम के मिलन की स्थिति का चित्रण किया जाता है, तब संयोग श्रृंगार होता है।

इसमें निम्न भाव दिखाई दे सकते हैं–

मिलन की प्रसन्नता

परस्पर प्रेम

प्रेमपूर्ण संवाद

सौंदर्य का अनुभव

परस्पर आकर्षण

आनंद और उल्लास

प्रकृति भी संयोग श्रृंगार को प्रभावशाली बना सकती है। वसंत ऋतु, सुगंधित पुष्प, चाँदनी रात, मधुर संगीत आदि वातावरण को प्रेमपूर्ण बनाने में सहायक हो सकते हैं।

ii. वियोग श्रृंगार

जब प्रेमी या प्रियजन एक-दूसरे से दूर हों और उनके मन में मिलन की तीव्र इच्छा हो, तब वियोग श्रृंगार की अनुभूति होती है।

इसके प्रमुख भाव हैं–

प्रिय की स्मृति

प्रतीक्षा

व्याकुलता

विरह

उदासी

मिलन की इच्छा

चिंता

वियोग में प्रेम की तीव्रता कई बार और अधिक प्रभावशाली दिखाई देती है। इसीलिए हिंदी साहित्य में वियोग श्रृंगार का व्यापक चित्रण मिलता है।

श्रृंगार रस की विशेषताएँ

1. इसका स्थायी भाव रति है।

2. प्रेम इसकी मूल संवेदना है।

3. संयोग और वियोग इसके प्रमुख पक्ष हैं।

4. सौंदर्य-वर्णन इसका महत्त्वपूर्ण अंग है।

5. प्रकृति-वर्णन इसके भाव को तीव्र कर सकता है।

6. भाषा प्रायः कोमल, मधुर और भावपूर्ण होती है।

ख हास्य रस

हँसी, विनोद और मनोरंजन से संबंधित साहित्यिक अनुभूति हास्य रस कहलाती है। इसका स्थायी भाव हास है।

हास्य उत्पन्न करने के लिए साहित्यकार किसी व्यक्ति के व्यवहार, परिस्थिति, वेशभूषा, कथन या किसी सामाजिक विसंगति का उपयोग कर सकता है।

हास्य रस की विशेषताएँ

इसका स्थायी भाव हास है।

विनोद इसकी प्रमुख विशेषता है।

भाषा में चुटीलापन हो सकता है।

पात्रों की असंगत गतिविधियों से हास्य उत्पन्न हो सकता है।

सामाजिक कमियों को उजागर करने में भी हास्य का प्रयोग किया जाता है।

हास्य साहित्य को मनोरंजक बनाने के साथ-साथ गंभीर विषयों को सरल ढंग से प्रस्तुत करने का माध्यम भी बन सकता है।

ग करुण रस

दुःख, शोक, वियोग, मृत्यु, असहायता और विपत्ति से उत्पन्न मार्मिक अनुभूति करुण रस कहलाती है। इसका स्थायी भाव शोक है।

करुण रस का उद्देश्य केवल पाठक को दुखी करना नहीं है। इसके माध्यम से उसके भीतर संवेदना, सहानुभूति और मानवीयता भी जाग्रत होती है।

करुण रस के प्रमुख आधार

प्रियजन की मृत्यु

वियोग

गरीबी और असहायता

युद्ध की त्रासदी

विपत्ति

पराजय

अन्याय से उत्पन्न पीड़ा

करुण रस की विशेषताएँ

1. शोक इसकी मूल भावना है।

2. वातावरण प्रायः गंभीर और मार्मिक होता है।

3. भाषा में संवेदनशीलता दिखाई देती है।

4. पाठक के भीतर सहानुभूति उत्पन्न होती है।

5. करुण प्रसंग मानव जीवन की अस्थिरता और संघर्ष को सामने ला सकते हैं।

घ रौद्र रस

क्रोध, आक्रोश, प्रतिरोध और प्रतिशोध की तीव्र भावना से उत्पन्न रस रौद्र रस कहलाता है। इसका स्थायी भाव क्रोध है।

अन्याय, अत्याचार, अपमान या शत्रुता जैसी परिस्थितियाँ रौद्र रस की उत्पत्ति के लिए उपयुक्त होती हैं।

रौद्र रस की विशेषताएँ

क्रोध इसकी मूल भावना है।

भाषा में तीव्रता और कठोरता हो सकती है।

पात्र की वाणी और व्यवहार में उत्तेजना दिखाई देती है।

अन्याय के विरोध का स्वर प्रमुख हो सकता है।

संघर्ष और प्रतिरोध की भावना दिखाई देती है।

रौद्र रस विशेष रूप से उन रचनाओं में प्रभावशाली होता है जहाँ किसी अन्याय के विरुद्ध संघर्ष प्रस्तुत किया गया हो।

ड वीर रस

साहस, पराक्रम, उत्साह, कर्तव्यबोध और आत्मविश्वास से उत्पन्न रस वीर रस कहलाता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है।

वीर रस मनुष्य को कठिन परिस्थितियों का सामना करने की प्रेरणा देता है। इसमें भय की अपेक्षा साहस और संघर्ष की भावना अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

वीर रस के प्रमुख भेद

1. युद्धवीर – युद्ध या संघर्ष में साहस और पराक्रम दिखाना।

2. दानवीर – अपनी प्रिय वस्तु या संपत्ति का उदारतापूर्वक दान करना।

3. धर्मवीर – धर्म, कर्तव्य और नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए दृढ़ रहना।

4. दयावीर – दूसरों की रक्षा और सहायता के लिए साहसपूर्वक आगे बढ़ना।

वीर रस की विशेषताएँ

उत्साह इसका स्थायी भाव है।

साहस और आत्मविश्वास प्रमुख होते हैं।

भाषा में ओज और शक्ति दिखाई देती है।

संघर्ष की भावना होती है।

देश, समाज, कर्तव्य और मानवीय मूल्यों की रक्षा इसका आधार बन सकती है।

च भयानक रस

भयानक रस का स्थायी भाव भय है। जब साहित्यिक रचना में ऐसी परिस्थितियों, घटनाओं अथवा दृश्यों का चित्रण किया जाता है जिनसे मन में डर, आशंका, आतंक या असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है, तब भयानक रस की अनुभूति होती है।

भयानक रस का उद्देश्य केवल पाठक को डराना नहीं है, बल्कि भय की स्थिति के माध्यम से मनुष्य की संवेदनशीलता, असहायता और संघर्षशीलता को सामने लाना भी है।

भयानक रस के प्रमुख अवयव

स्थायी भाव– भय

आलम्बन विभाव– भयानक परिस्थिति, शत्रु, हिंसक पशु, अपराधी, प्राकृतिक आपदा आदि।

उद्दीपन विभाव– अँधेरा, सुनसान स्थान, भयावह आवाजें, तूफान, रक्तरंजित दृश्य आदि।

अनुभाव– काँपना, घबराना, पीछे हटना, चीखना, स्वर का बदल जाना, आँखों में भय दिखाई देना आदि।

संचारी भाव– चिंता, शंका, दैन्य, मोह, त्रास, स्मृति आदि।

भयानक रस की प्रमुख विशेषताएँ

1. इसमें भय की भावना प्रधान होती है।

2. वातावरण प्रायः गंभीर और तनावपूर्ण होता है।

3. अंधकार, एकांत, संकट और अनिश्चितता इसके प्रभाव को बढ़ाते हैं।

4. पात्रों की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म चित्रण किया जाता है।

5. पाठक या दर्शक के मन में आशंका और तनाव उत्पन्न होता है।

उदाहरण

कल्पना कीजिए कि एक व्यक्ति रात के समय घने जंगल से अकेला गुजर रहा है। चारों ओर सन्नाटा है। अचानक उसे दूर से किसी अज्ञात प्राणी की आवाज सुनाई देती है। वह रुक जाता है और चारों ओर देखने लगता है। उसके हाथ-पाँव काँपने लगते हैं।

यहाँ अंधकार, जंगल और रहस्यमय आवाजें उद्दीपन विभाव हैं तथा पात्र का काँपना और घबराना अनुभाव हैं। इनसे उत्पन्न भय की अनुभूति भयानक रस का निर्माण करती है।

साहित्यिक महत्त्व

भयानक रस जीवन में उपस्थित संकटों और भय की परिस्थितियों को कलात्मक रूप में व्यक्त करता है। इसके माध्यम से लेखक पाठक को मानसिक तनाव की अनुभूति कराता है तथा संकट के समय मनुष्य के व्यवहार को भी सामने लाता है।

छ बीभत्स रस

बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। जब किसी घृणित, अरुचिकर, अपवित्र या अत्यंत अप्रिय वस्तु, घटना या व्यवहार का कलात्मक चित्रण किया जाता है और उससे मन में घृणा उत्पन्न होती है, तब बीभत्स रस की अनुभूति होती है।

बीभत्स रस का संबंध केवल बाहरी गंदगी से नहीं है। अनैतिक आचरण, क्रूरता, भ्रष्ट व्यवहार और अमानवीयता भी जुगुप्सा उत्पन्न कर सकती है।

बीभत्स रस के प्रमुख अवयव

स्थायी भाव– जुगुप्सा

आलम्बन– घृणित वस्तु, गंदगी, अमानवीय व्यवहार, क्रूर कर्म आदि।

उद्दीपन– दुर्गंध, विकृत दृश्य, अस्वच्छ वातावरण, हिंसक या अमानवीय कार्य।

अनुभाव– मुँह फेर लेना, नाक सिकोड़ना, घृणा व्यक्त करना, पीछे हटना आदि।

संचारी भाव– वितर्क, आवेग, मोह, चिंता, दैन्य आदि।

प्रमुख विशेषताएँ

घृणा इसकी मूल अनुभूति है।

वर्णन प्रायः अप्रिय अथवा विकर्षक वातावरण से जुड़ा होता है।

अमानवीयता और नैतिक पतन को भी इसके माध्यम से दिखाया जा सकता है।

पाठक को किसी अनुचित या घृणित कर्म से दूर रहने की प्रेरणा मिलती है।

उदाहरण

यदि किसी रचना में युद्ध के बाद का ऐसा दृश्य प्रस्तुत किया जाए जिसमें चारों ओर अव्यवस्था, दुर्गंध और विनाश दिखाई दे तथा पात्र उस दृश्य से घृणा अनुभव करे, तो वहाँ बीभत्स रस की अभिव्यक्ति हो सकती है।

साहित्यिक महत्त्व

बीभत्स रस पाठक में विवेक पैदा करता है। यह बताता है कि कौन-से कार्य, व्यवहार या परिस्थितियाँ मनुष्य और समाज के लिए घृणित हैं। इस प्रकार यह नैतिक चेतना को भी मजबूत करता है।

ज अद्भुत रस

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। जब मनुष्य किसी असाधारण, आश्चर्यजनक, अनोखी या कल्पनातीत घटना को देखकर चकित हो जाता है, तब अद्भुत रस की अनुभूति होती है। अद्भुत केवल चमत्कार से उत्पन्न नहीं होता। प्रकृति की विराटता, विज्ञान की उपलब्धियाँ, असाधारण मानवीय क्षमता और अनोखी घटनाएँ भी विस्मय उत्पन्न कर सकती हैं।

अद्भुत रस के प्रमुख अवयव

स्थायी भाव– विस्मय

आलम्बन– अद्भुत घटना, असाधारण व्यक्ति, अनोखी वस्तु या दृश्य।

उद्दीपन– उसकी असामान्यता, विशालता, नवीनता या अप्रत्याशितता।

अनुभाव– आँखें फैल जाना, आश्चर्य से देखना, कुछ समय के लिए निःशब्द हो जाना आदि।

संचारी भाव– जिज्ञासा, हर्ष, आवेग, स्मृति, रोमांच आदि।

प्रमुख विशेषताएँ

1. विस्मय इसका मूल आधार है।
2. इसमें नवीनता और असाधारणता का विशेष महत्त्व है।
3. प्रकृति-वर्णन में इसका सुंदर प्रयोग होता है।
4. वैज्ञानिक उपलब्धियाँ भी आधुनिक साहित्य में अद्भुत भाव उत्पन्न कर सकती हैं।

5. यह पाठक की जिज्ञासा को बढ़ाता है।

उदाहरण

एक बच्चा पहली बार तारों से भरे खुले आकाश को देखता है। असंख्य चमकते तारों और आकाश की विशालता को देखकर वह कुछ देर तक बिना बोले उसे देखता रहता है। उसके मन में अनेक प्रश्न उठते हैं।

यहाँ प्रकृति की विराटता से उत्पन्न विस्मय अद्‌भुत रस का आधार बनता है।

साहित्यिक महत्त्व

अद्‌भुत रस मनुष्य की जिज्ञासा और कल्पनाशक्ति को विकसित करता है। यह उसे संसार को केवल सामान्य दृष्टि से देखने के स्थान पर उसके रहस्यों और संभावनाओं के प्रति संवेदनशील बनाता है।

झ शांत रस

शांत रस का संबंध निर्वेद अथवा शम से माना जाता है। जब सांसारिक मोह, लोभ, अहंकार और इच्छाओं से मन धीरे-धीरे मुक्त होकर आत्मिक शांति की ओर बढ़ता है, तब शांत रस की अनुभूति होती है।

शांत रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक अंतर्मुखी प्रकृति का है। इसमें बाहरी उत्तेजना की अपेक्षा मन की स्थिरता और वैराग्य का महत्त्व अधिक होता है।

शांत रस के प्रमुख अवयव

स्थायी भाव– निर्वेद/शम

आलम्बन– जीवन की नश्वरता, आध्यात्मिक चिंतन, संसार की अस्थिरता आदि।

उद्‌दीपन– वैराग्यपूर्ण वातावरण, मृत्यु का बोध, आध्यात्मिक विचार, साधना आदि।

अनुभाव– मन की स्थिरता, शांत मुख-मुद्रा, आसक्ति का अभाव, संयम आदि।

संचारी भाव– स्मृति, मति, धृति, निर्वेद, चिंता आदि।

प्रमुख विशेषताएँ

इसमें मन की शांति और स्थिरता प्रमुख होती है।

सांसारिक मोह से दूरी दिखाई देती है।

आत्मचिंतन और वैराग्य का भाव रहता है।

भाषा सामान्यतः गंभीर और संयत होती है।

यह मनुष्य को आत्मिक संतुलन की ओर ले जाता है।

उदाहरण

किसी व्यक्ति ने जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखे। धीरे-धीरे उसे यह अनुभव हुआ कि धन, पद और प्रसिद्धि स्थायी नहीं हैं। वह बाहरी उपलब्धियों की चिंता छोड़कर संतुलित और शांत जीवन जीने लगता है। यहाँ संसार की अस्थिरता का बोध और उससे उत्पन्न वैराग्य शांत रस की अनुभूति कराते हैं।

साहित्यिक महत्त्व

शांत रस साहित्य को आत्मचिंतन और जीवन-दर्शन से जोड़ता है। यह मनुष्य को मोह, अहंकार और अनावश्यक इच्छाओं से ऊपर उठकर जीवन के व्यापक अर्थ को समझने की प्रेरणा देता है।

7.3.2 नौ रसों का तुलनात्मक विवेचन

रसों को उनके स्थायी भाव और प्रमुख अनुभूति के आधार पर इस प्रकार समझा जा सकता है–

क्रम	रस	स्थायी भाव	प्रमुख अनुभूति
1	श्रृंगार	रति	प्रेम एवं अनुराग
2	हास्य	हास	हँसी एवं विनोद
3	करुण	शोक	दुःख एवं संवेदना
4	रौद्र	क्रोध	आक्रोश एवं प्रतिरोध
5	वीर	उत्साह	साहस एवं पराक्रम
6	भयानक	भय	डर एवं आतंक
7	बीभत्स	जुगुप्सा	घृणा एवं विकर्षण
8	अद्भुत	विस्मय	आश्चर्य एवं कौतूहल
9	शांत	निर्वेद/शम	वैराग्य एवं मानसिक शांति

रसों के पारस्परिक संबंध

एक ही साहित्यिक रचना में अनेक रसों की उपस्थिति हो सकती है। उदाहरण के लिए युद्ध पर आधारित किसी रचना में वीर रस प्रधान हो सकता है, लेकिन युद्ध में किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के प्रसंग में करुण रस भी उपस्थित हो सकता है। अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के प्रसंग में रौद्र रस भी दिखाई दे सकता है।

इस प्रकार रस एक-दूसरे से पूर्णतः अलग-थलग नहीं होते। साहित्य में परिस्थितियों के अनुसार उनका प्रभाव बदल सकता है।

7.3.3 रसों की पहचान कैसे करें?

किसी काव्यांश या साहित्यिक अंश में रस की पहचान करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए–

1. सबसे पहले यह देखें कि रचना में मुख्य भाव कौन-सा है।

2. फिर उस भाव से संबंधित पात्र और परिस्थिति को पहचानें।

3. वातावरण किस प्रकार की अनुभूति पैदा कर रहा है, यह देखें।

4. पात्रों की गतिविधियों और प्रतिक्रियाओं को समझें।

5. अंत में यह निर्धारित करें कि पाठक के मन में प्रेम, हँसी, दुःख, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, विस्मय या शांति में से कौन-सी प्रमुख अनुभूति उत्पन्न होती है।

उदाहरण

"सैनिक सीमा पर खड़ा रहा। चारों ओर गोलियों की आवाजें थीं, लेकिन उसने पीछे हटने के बजाय अपने साथियों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया।"

यहाँ प्रमुख भाव उत्साह है और सैनिक का साहस उसका अनुभवात्मक रूप है। इसलिए यहाँ वीर रस की प्रधानता है।

इसी प्रकार–

"अपने प्रिय मित्र के अचानक चले जाने का समाचार सुनकर वह देर तक मौन बैठा रहा।"

यहाँ शोक प्रधान है, इसलिए करुण रस की अनुभूति होती है।

7.3.4 रस-निष्पत्ति

रस-निष्पत्ति भारतीय काव्यशास्त्र का अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में प्रसिद्ध सूत्र दिया–

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"

सरल शब्दों में इसका अर्थ है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से स्थायी भाव परिपक्व होकर रस का रूप ग्रहण करता है।

रस-निष्पत्ति को सरल रूप में समझें

स्थायी भाव + विभाव + अनुभाव + संचारी भाव → रसात्मक अनुभूति

उदाहरण के लिए किसी रचना में प्रिय व्यक्ति से मिलने की परिस्थिति है। प्रिय व्यक्ति आलम्बन विभाव है, सुंदर वातावरण उद्दीपन विभाव है, मुस्कान और प्रसन्नता अनुभाव हैं तथा उत्कंठा, लज्जा आदि संचारी भाव हैं। इन सबके संयोग से स्थायी भाव रति पुष्ट होकर श्रृंगार रस की अनुभूति कराता है।

इस प्रकार रस केवल किसी एक भाव का नाम नहीं है। अनेक भावात्मक और कलात्मक तत्त्वों के उचित संयोजन से सहृदय पाठक के मन में जो सौंदर्यपूर्ण अनुभूति उत्पन्न होती है, वही रस है।

7.4 अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1- भयानक रस का स्थायी भाव क्या है?

प्रश्न 2 बीभत्स रस की मूल अनुभूति क्या होती है?

प्रश्न 3- अद्भुत रस का स्थायी भाव लिखिए।

प्रश्न 4- शांत रस का संबंध किन भावों से माना जाता है?

प्रश्न 5- श्रृंगार रस के दो प्रमुख रूप कौन-से हैं?

प्रश्न 6- वीर रस के प्रमुख रूपों के नाम लिखिए।

प्रश्न 7- रस की पहचान करने में स्थायी भाव का क्या महत्त्व है?

प्रश्न 8- रस-निष्पत्ति का सूत्र लिखिए।

प्रश्न 9 - विभाव के दो प्रमुख प्रकार कौन-से हैं?

प्रश्न 10 - रस और भाव में क्या अंतर है?

7.5 सारांश

रस भारतीय काव्यशास्त्र की अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। साहित्य में जब किसी भाव को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है और सहृदय पाठक या दर्शक उस भाव का सौंदर्यपूर्ण आस्वादन करता है, तब रस की अनुभूति होती है।

रस के निर्माण में स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का विशेष महत्त्व है। विभाव दो प्रकार के होते हैं—आलम्बन और उद्दीपन। अनुभाव स्थायी भाव की बाहरी अभिव्यक्ति को स्पष्ट करते हैं, जबकि संचारी भाव मुख्य भाव को पुष्ट करने का कार्य करते हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में नौ प्रमुख रस माने जाते हैं—श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत।

श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है और इसके दो प्रमुख रूप संयोग और वियोग हैं।

हास्य रस का आधार हास है।

करुण रस का स्थायी भाव शोक है।

रौद्र रस का आधार क्रोध है।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है तथा इसमें साहस और कर्तव्य-बोध प्रमुख हैं।

भयानक रस भय से, बीभत्स रस जुगुप्सा से, अद्भुत रस विस्मय से और शांत रस निर्वेद अथवा शम से संबंधित है।

रसों का साहित्य में महत्त्व इसलिए है कि वे रचना को केवल सूचना या घटना का वर्णन न रहने देकर उसे भावात्मक और कलात्मक अनुभव में बदल देते हैं।

7.6 मुख्य शब्द एवं अर्थ

1. रस – साहित्य से प्राप्त होने वाली सौंदर्यपूर्ण भावानुभूति या आस्वाद।

2. भाव – मन की वह स्थिति या अनुभूति जो किसी परिस्थिति के कारण उत्पन्न होती है।

3. स्थायी भाव – मन में अपेक्षाकृत स्थिर रहने वाला मूल भाव, जो उचित परिस्थितियों में रस का आधार बनता है।

4. विभाव – वह कारण या परिस्थिति जिससे स्थायी भाव जाग्रत और पुष्ट होता है।

5. आलम्बन विभाव – वह व्यक्ति या वस्तु जिसके कारण भाव उत्पन्न होता है।

6. उद्दीपन विभाव – वे बाहरी परिस्थितियाँ या वातावरण जो भाव को तीव्र करते हैं।

7. अनुभाव – स्थायी भाव के कारण दिखाई देने वाली शारीरिक या व्यवहारगत अभिव्यक्तियाँ।

8. संचारी भाव – वे अस्थायी भाव जो मुख्य स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं।

9. सात्त्विक भाव – भाव की तीव्रता के कारण उत्पन्न होने वाली स्वाभाविक शारीरिक प्रतिक्रियाएँ।

10. श्रृंगार रस – रति स्थायी भाव पर आधारित रस, जिसमें प्रेम, अनुराग और सौंदर्य प्रमुख हैं।

11. हास्य रस – हास स्थायी भाव पर आधारित रस, जिसमें हँसी और विनोद की अनुभूति होती है।

12. करुण रस – शोक स्थायी भाव पर आधारित रस, जिसमें दुःख और संवेदना प्रमुख हैं।

13. रौद्र रस – क्रोध स्थायी भाव पर आधारित रस।

14. वीर रस – उत्साह स्थायी भाव पर आधारित रस, जिसमें साहस और पराक्रम प्रमुख हैं।

15. भयानक रस – भय स्थायी भाव पर आधारित रस।

16. बीभत्स रस – जुगुप्सा स्थायी भाव पर आधारित रस।

17. अद्भुत रस – विस्मय स्थायी भाव पर आधारित रस।

18. शांत रस – निर्वेद या शम से संबंधित रस, जिसमें वैराग्य और मानसिक शांति प्रमुख हैं।

7.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

क. स्व-मूल्यांकन प्रश्न

प्रश्न 1. रस से क्या अभिप्राय है?

उत्तर: साहित्यिक रचना में व्यक्त भाव जब कलात्मक रूप से सहृदय के मन में सौंदर्यपूर्ण अनुभूति उत्पन्न करता है और उसका आस्वाद प्राप्त होता है, तो उसे रस कहते हैं। रस साहित्य के भावात्मक प्रभाव को गहराई प्रदान करता है।

प्रश्न 2. रस के प्रमुख अवयव कौन-से हैं?

उत्तर: रस के प्रमुख अवयव स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव हैं। इनके उचित संयोग से स्थायी भाव पुष्ट होकर रसात्मक अनुभूति उत्पन्न करता है।

प्रश्न 3. विभाव कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर: विभाव मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन वह व्यक्ति या वस्तु है जिससे भाव संबंधित होता है, जबकि उद्दीपन वह वातावरण या परिस्थिति है जो उस भाव को तीव्र करती है।

प्रश्न 4. श्रृंगार रस के प्रमुख रूप कौन-से हैं?

उत्तर: श्रृंगार रस के दो प्रमुख रूप संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार हैं। संयोग में प्रिय के मिलन का आनंद रहता है, जबकि वियोग में प्रिय से अलगाव, प्रतीक्षा और विरह की अनुभूति प्रमुख होती है।

प्रश्न 5. वीर रस का स्थायी भाव क्या है?

उत्तर: वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। इसमें साहस, पराक्रम, कर्तव्य-पालन, आत्मविश्वास और संघर्षशीलता प्रमुख होती है।

प्रश्न 6. करुण रस का साहित्य में क्या महत्त्व है?

उत्तर: करुण रस मनुष्य की संवेदना को जाग्रत करता है। दुःख, वियोग, मृत्यु, विपत्ति आदि के माध्यम से यह पाठक में सहानुभूति और मानवीय संवेदना उत्पन्न करता है।

प्रश्न 7. अद्भुत रस कब उत्पन्न होता है?

उत्तर: जब किसी असाधारण, अनोखी या आश्चर्यजनक घटना, वस्तु अथवा दृश्य से मन में विस्मय और कौतूहल उत्पन्न होता है, तब अद्भुत रस की अनुभूति होती है।

प्रश्न 8. शांत रस की प्रमुख विशेषता क्या है?

उत्तर: शांत रस में मन की स्थिरता, वैराग्य, आत्मचिंतन और सांसारिक मोह से दूरी प्रमुख होती है। इसका संबंध निर्वेद या शम से माना जाता है।

प्रश्न 9. रस और भाव में अंतर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: भाव मन की स्थिति या अनुभूति है, जबकि रस उस भाव की कलात्मक अभिव्यक्ति के बाद सहृदय द्वारा अनुभव किया जाने वाला सौंदर्यपूर्ण आस्वाद है। इसलिए भाव रस का आधार बन सकता है, लेकिन दोनों एक ही नहीं हैं।

प्रश्न 10. रस-निष्पत्ति को संक्षेप में समझाइए।

उत्तर: विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से स्थायी भाव पुष्ट और परिपक्व होता है। सहृदय के मन में उत्पन्न इसी परिपक्व भावानुभूति को रस कहा जाता है।

7.8 अपनी प्रगति जाँचें – उत्तर

1. भयानक रस का स्थायी भाव – भय।

2. बीभत्स रस की मूल अनुभूति – जुगुप्सा अथवा घृणा।

3. अद्भुत रस का स्थायी भाव – विस्मय।

4. शांत रस – निर्वेद अथवा शम से संबंधित है।

5. श्रृंगार रस के दो रूप – संयोग और वियोग।

6. वीर रस के प्रमुख रूप – युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और दयावीर।

7. स्थायी भाव का महत्त्व – स्थायी भाव रस की मूल आधारभूमि है। विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के सहयोग से यही स्थायी भाव परिपक्व होकर रसात्मक अनुभूति का आधार बनता है।

8. रस-निष्पत्ति का सूत्र – "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"

9. विभाव के दो प्रकार – आलम्बन और उद्दीपन।

10. रस और भाव में अंतर – भाव मन की स्थिति है, जबकि रस उस भाव की कलात्मक अभिव्यक्ति से उत्पन्न सौंदर्यपूर्ण आस्वाद है।

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भरतमुनि – नाट्यशास्त्र।

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – रस मीमांसा।

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास।

4. आचार्य नगेन्द्र – भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका।

5. डॉ. नगेन्द्र – रस-सिद्धांत।

6. डॉ. गुलाबराय – काव्य के रूप।

7. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त – भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र।

8. डॉ. बच्चन सिंह – काव्यशास्त्र।

9. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी – भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख सिद्धांत।

10. हिन्दी साहित्य एवं काव्यशास्त्र से संबंधित विश्वविद्यालय स्तरीय अध्ययन-सामग्री।

11. विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित हिन्दी काव्यशास्त्र एवं रस-सिद्धांत संबंधी पाठ्य-सामग्री।

12. भारतीय काव्यशास्त्र से संबंधित मान्य संदर्भ ग्रन्थ एवं आलोचनात्मक अध्ययन।

कोर्ड कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या : 8	Vetter : Dr. कमलेश देवी
इकाई - 4 भाषा की परिभाषा तथा भाषा के विविध रूप (बोली, मानक भाषा, राष्ट्रभाषा, माध्यम भाषा और मातृभाषा)	

पाठ-8

भाषा की परिभाषा तथा भाषा के विविध रूप

(बोली, मानक भाषा, राष्ट्रभाषा, माध्यम भाषा और मातृभाषा)

8.0 अधिगम उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 पाठ का मुख्य भाग

8.2.1 भाषा का अर्थ

8.2.2 भाषा की परिभाषा

8.2.3 भाषा का सामाजिक स्वरूप

8.2.4 भाषा और विचार

8.2.5 भाषा और संस्कृति

8.2.6 भाषा की प्रमुख विशेषताएँ

8.2.7 भाषा के प्रमुख कार्य

8.2.8 भाषा और समाज का पारस्परिक संबंध

8.2.9 भाषा के अध्ययन की आवश्यकता

8.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

8.3.1 भाषा के विविध रूप

8.3.2 बोली : अर्थ एवं स्वरूप

8.3.3 बोली की प्रमुख विशेषताएँ

8.3.4 हिन्दी क्षेत्र की बोलियाँ

8.3.5 बोली का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

8.3.6 बोली और भाषा का संबंध

8.3.7 मानक भाषा : अर्थ एवं स्वरूप

8.3.8 मानक भाषा की विशेषताएँ

8.3.9 मानक भाषा और बोली में अंतर

8.3.10 राष्ट्रभाषा और राजभाष

8.3.11 माध्यम भाषा एवं मातृभाषा: अर्थ एवं महत

8.4 अपनी प्रगति जाँचें

8.5 सारांश

8.6 मुख्य शब्द

8.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

8.8 अपनी प्रगति जाँचें के उत्तर

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 अधिगम उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद विद्यार्थी–

1. भाषा के अर्थ और स्वरूप को समझ सकेंगे।
2. भाषा की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
3. भाषा के सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व को समझ सकेंगे।
4. बोली की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. भाषा और बोली के संबंध को समझ सकेंगे।
6. मानक भाषा की आवश्यकता और उपयोगिता बता सकेंगे।
7. राष्ट्रभाषा और राजभाषा की अवधारणाओं में अंतर कर सकेंगे।
8. माध्यम भाषा के शैक्षिक महत्त्व को समझ सकेंगे।
9. मातृभाषा की व्यक्ति और समाज के जीवन में भूमिका स्पष्ट कर सकेंगे।
10. भाषा के विभिन्न रूपों की पारस्परिकता को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने विचारों, भावनाओं, इच्छाओं, अनुभवों और ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने के लिए किसी न किसी माध्यम का सहारा लेता है। इन माध्यमों में भाषा का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। भाषा के बिना मनुष्य के सामाजिक जीवन, ज्ञान के विकास और सांस्कृतिक परंपरा की कल्पना करना कठिन है।

बच्चा अपने जीवन के प्रारंभिक चरण में अपने आसपास के लोगों को सुनकर भाषा सीखता है। परिवार से प्राप्त भाषा उसके भावनात्मक संसार का आधार बनती है। विद्यालय में वह अधिक व्यवस्थित भाषा का अध्ययन करता है। आगे चलकर वह शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, व्यवसाय और सामाजिक जीवन में भाषा के विभिन्न रूपों का प्रयोग करता है।

इस प्रकार व्यक्ति के जीवन में एक ही भाषा-रूप हमेशा प्रयुक्त नहीं होता। घर में जिस भाषा या भाषा-रूप का प्रयोग होता है, वह उसकी मातृभाषा हो सकती है। किसी क्षेत्र विशेष में प्रचलित भाषा-रूप बोली कहलाता है। शिक्षा और औपचारिक लेखन में प्रयुक्त व्यवस्थित रूप मानक भाषा का रूप ले सकता है। जिस भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती है, वह माध्यम भाषा कहलाती है।

इससे स्पष्ट है कि भाषा केवल शब्दों का समूह नहीं है। यह व्यक्ति, समाज, संस्कृति, शिक्षा और संचार से जुड़ी हुई एक व्यापक व्यवस्था है।

इस पाठ में भाषा की परिभाषा और उसके स्वरूप को समझने के बाद उसके प्रमुख रूपों—बोली, मानक भाषा, राष्ट्रभाषा, माध्यम भाषा और मातृभाषा—का अध्ययन किया जाएगा।

8.2 पाठ का मुख्य भाग

8.2.1 भाषा का अर्थ

'भाषा' शब्द का संबंध सामान्यतः बोलने और अपनी बात व्यक्त करने की क्रिया से माना जाता है। व्यापक अर्थ में भाषा वह सामाजिक व्यवस्था है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं, अनुभवों और ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाता है।

भाषा में केवल बोले गए शब्द ही शामिल नहीं होते। किसी भाषा की अपनी ध्वनि-व्यवस्था, शब्द-संपदा, वाक्य-विन्यास और अर्थ-व्यवस्था होती है। इन सभी के सहयोग से भाषा प्रभावी संचार का माध्यम बनती है।

उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति कहता है–"आज मौसम बहुत सुहावना है", तो वह केवल कुछ शब्दों का उच्चारण नहीं कर रहा होता, बल्कि अपने अनुभव को दूसरे व्यक्ति तक पहुँचा रहा होता है।

इसी प्रकार साहित्य में भाषा का प्रयोग केवल सूचना देने के लिए नहीं, बल्कि भाव, कल्पना, सौंदर्य और विचार व्यक्त करने के लिए भी किया जाता है।

इस दृष्टि से भाषा को मानव जीवन की संचारात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था कहा जा सकता है।

8.2.2 भाषा की परिभाषा

भाषाविज्ञान के अध्ययन में भाषा को अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग दृष्टियों से समझाया है। किसी ने भाषा के सामाजिक पक्ष पर बल दिया है, किसी ने उसके संचारात्मक पक्ष पर और किसी ने उसकी संरचना पर।

इन विचारों को सरल रूप में समझें तो भाषा की प्रमुख विशेषताएँ तीन स्तरों पर दिखाई देती हैं–

पहला–सामाजिक पक्ष:
भाषा समाज में विकसित होती है और समाज के सदस्य उसका प्रयोग करते हैं।

दूसरा–संचारात्मक पक्ष:
भाषा के द्वारा व्यक्ति अपने विचार और भाव दूसरों तक पहुँचाता है।

तीसरा–व्यवस्थित पक्ष:
भाषा मनमाने शब्दों का समूह नहीं है। इसमें ध्वनि, शब्द, वाक्य और अर्थ के अपने नियम होते हैं।

अतः भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

भाषा मनुष्य द्वारा सामाजिक जीवन में विचारों, भावनाओं, अनुभवों और ज्ञान के आदान-प्रदान के लिए प्रयुक्त एक व्यवस्थित एवं परिवर्तनशील माध्यम है।

यह परिभाषा भाषा के सामाजिक, संचारात्मक और संरचनात्मक तीनों पक्षों को सामने लाती है।

8.2.3 भाषा का सामाजिक स्वरूप

भाषा का निर्माण और विकास समाज में होता है। व्यक्ति अकेले भाषा का निर्माण नहीं करता। वह अपने परिवार, समुदाय और सामाजिक वातावरण से भाषा सीखता है।

एक बच्चा जिस समाज में बड़ा होता है, उसी समाज के भाषा-रूप को सामान्यतः अपनाता है। यदि उसका परिवेश हिन्दी भाषी है, तो वह हिन्दी अथवा हिन्दी के किसी क्षेत्रीय रूप को सीख सकता है। दूसरे क्षेत्र में रहने वाला बच्चा किसी अन्य भाषा या बोली को सीख सकता है।

इस प्रकार भाषा व्यक्ति को समाज से जोड़ती है।

भाषा सामाजिक संबंधों को बनाए रखने में भी सहायक है। अभिवादन, बातचीत, विचार-विमर्श, सहयोग, निर्देश, भावनात्मक संवाद आदि सभी सामाजिक गतिविधियों में भाषा की भूमिका रहती है। इसलिए भाषा को केवल व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का माध्यम मानना पर्याप्त नहीं है। उसका वास्तविक स्वरूप सामाजिक है।

8.2.4 भाषा और विचार

भाषा और विचार का संबंध बहुत निकट है। मनुष्य अपने अनेक विचारों को भाषा के माध्यम से स्पष्ट रूप देता है। जब हम किसी विषय को समझाने, याद रखने या किसी निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करते हैं, तब भाषा हमारी सहायता करती है।

भाषा विचारों को व्यवस्थित करने का माध्यम भी बनती है। किसी अनुभव को शब्द देने से व्यक्ति उसे अधिक स्पष्ट रूप में समझ और व्यक्त कर सकता है।

हालाँकि विचार और भाषा को बिल्कुल एक ही नहीं माना जा सकता। मनुष्य के अनुभव और भाव कभी-कभी शब्दों से अधिक व्यापक होते हैं। फिर भी विचारों को सामाजिक रूप से व्यक्त करने और सुरक्षित रखने में भाषा की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

-

8.2.5 भाषा और संस्कृति

भाषा किसी समाज की संस्कृति की संवाहक होती है। किसी क्षेत्र की लोककथाएँ, लोकगीत, कहावतें, मुहावरे, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज और जीवन-अनुभव भाषा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं।

किसी भाषा की शब्दावली में उस समाज के जीवन की झलक दिखाई देती है। कृषि-प्रधान समाजों में कृषि से संबंधित अनेक शब्द मिलते हैं। समुद्र के निकट रहने वाले समुदायों की भाषा में समुद्र और जल-जीवन से जुड़े अनेक शब्द मिल सकते हैं।

इसी प्रकार लोकगीतों और कहावतों में समाज का अनुभव संचित रहता है।

इसलिए किसी भाषा का अध्ययन केवल उसके व्याकरण का अध्ययन नहीं है। उसके साथ जुड़ी संस्कृति को समझना भी आवश्यक है।

8.2.6 भाषा की प्रमुख विशेषताएँ

भाषा की प्रमुख विशेषताओं को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

i . भाषा सामाजिक है - भाषा समाज में विकसित होती है और सामाजिक जीवन में प्रयुक्त होती है।

Ii . भाषा अर्जित की जाती है - मनुष्य भाषा का ज्ञान सामान्यतः अपने परिवेश से प्राप्त करता है। बच्चा सुनने, अनुकरण करने और निरंतर प्रयोग के माध्यम से भाषा सीखता है।

Iii भाषा परिवर्तनशील है - समय के साथ भाषा में नए शब्द आते हैं, पुराने शब्द कम होते हैं और उच्चारण तथा वाक्य-प्रयोग में परिवर्तन होता है।

Iv . भाषा संचार का माध्यम है - भाषा का सबसे प्रमुख कार्य व्यक्ति से व्यक्ति तक सूचना और विचार पहुँचाना है।

V भाषा सृजनात्मक है - मनुष्य सीमित भाषिक साधनों से अनेक नए वाक्य और अभिव्यक्तियाँ बना सकता है।

Vi . भाषा संस्कृति की वाहक है - भाषा के माध्यम से समाज अपनी परंपराओं और सांस्कृतिक अनुभवों को आगे बढ़ाता है।

Vii भाषा नियमबद्ध है - प्रत्येक भाषा की अपनी ध्वनि, शब्द और वाक्य-रचना संबंधी व्यवस्था होती है।

Viii भाषा परिवर्तन के साथ निरंतर विकसित होती है - समाज में होने वाले परिवर्तन भाषा को भी प्रभावित करते हैं। तकनीक और नए सामाजिक अनुभवों के कारण भाषा में नई शब्दावली जुड़ती रहती है।

8.2.7 भाषा के प्रमुख कार्य

भाषा के अनेक कार्य हैं। इनमें प्रमुख हैं–

संचार का कार्य:
व्यक्ति अपनी बात दूसरे तक पहुँचाता है।

भाव-अभिव्यक्ति का कार्य:
प्रेम, दुख, खुशी, क्रोध, आश्चर्य आदि भावों को व्यक्त किया जाता है।

ज्ञान का कार्य:
ज्ञान का अर्जन, संरक्षण और प्रसार भाषा के माध्यम से होता है।

सामाजिक संबंधों का कार्य:
भाषा लोगों के बीच संबंध स्थापित करने और बनाए रखने में सहायक होती है।

सांस्कृतिक कार्य:
भाषा संस्कृति और परंपरा को पीढ़ियों तक पहुँचाती है।

साहित्यिक कार्य:
कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और अन्य साहित्यिक विधाओं की रचना भाषा के माध्यम से होती है।

शैक्षिक कार्य: - शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया में भाषा का केंद्रीय स्थान है।

भाषा का परिवर्तनशील स्वरूप

भाषा कभी स्थिर नहीं रहती। समाज बदलता है तो भाषा भी बदलती है।

नई तकनीक आने पर नए शब्द प्रचलित होते हैं। सामाजिक जीवन में नए व्यवसाय और नए विचार आते हैं तो उनके लिए नई शब्दावली विकसित होती है।
भाषा में परिवर्तन होना उसकी कमजोरी नहीं, बल्कि उसके जीवंत होने का प्रमाण है।

8.2.8 भाषा और समाज का पारस्परिक संबंध

भाषा समाज को प्रभावित करती है और समाज भी भाषा को प्रभावित करता है। सामाजिक परिवर्तन के साथ भाषा में परिवर्तन आता है। इसी प्रकार भाषा सामाजिक विचारों और संबंधों को व्यक्त करने में भूमिका निभाती है।

शिक्षा के विस्तार, शहरीकरण, तकनीकी विकास, सामाजिक संपर्क और जनसंचार ने भाषाओं के स्वरूप को प्रभावित किया है।

आज एक व्यक्ति अपने जीवन में अनेक भाषा-रूपों का प्रयोग कर सकता है। इससे भाषा का स्वरूप और अधिक बहुआयामी हो गया है।

8.2.9 भाषा के अध्ययन की आवश्यकता

भाषा का अध्ययन केवल परीक्षा की दृष्टि से आवश्यक नहीं है। इसके माध्यम से हम–

मानव संचार को समझते हैं।

भाषा और समाज का संबंध समझते हैं।

अपनी भाषिक परंपरा से परिचित होते हैं।

भाषा के परिवर्तन को समझते हैं।

विभिन्न भाषा-रूपों का सम्मान करना सीखते हैं।

साहित्य को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं।

शिक्षा में भाषा की भूमिका पहचानते हैं।

भाषा का अध्ययन हमें यह समझने में भी सहायता करता है कि भाषिक विविधता समाज की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी समृद्धि है।

जी। अब हम नए संस्करण का 8.4 पाठ के आगे का मुख्य भाग शुरू करते हैं। इसे जानबूझकर संक्षिप्त लेकिन पर्याप्त रखा जा रहा है, ताकि पाठ फिर से बहुत बड़ा न हो।

8.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

8.3.1 भाषा के विविध रूप

भाषा का प्रयोग व्यक्ति और समाज की अलग-अलग आवश्यकताओं के अनुसार अलग-अलग रूपों में होता है। किसी क्षेत्र में स्थानीय बोलचाल के लिए बोली का प्रयोग हो सकता है, जबकि शिक्षा और औपचारिक लेखन में मानक भाषा का प्रयोग किया जाता है। परिवार में व्यक्ति अपनी मातृभाषा का प्रयोग कर सकता है और विद्यालय में किसी दूसरी भाषा को माध्यम भाषा के रूप में अपना सकता है।

इस प्रकार भाषा के विविध रूप सामाजिक जीवन की अलग-अलग आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इस पाठ में इनके प्रमुख रूपों का अध्ययन किया जा रहा है।

8.3.2 बोली : अर्थ एवं स्वरूप

किसी विशेष क्षेत्र या समुदाय में बोलचाल के लिए प्रयुक्त भाषा के विशिष्ट रूप को सामान्यतः बोली कहा जाता है। बोली का संबंध उस क्षेत्र के लोगों के दैनिक जीवन, संस्कृति और सामाजिक व्यवहार से गहरा होता है।

बोली का स्वरूप प्रायः मौखिक होता है, यद्यपि अनेक बोलियों में साहित्य भी रचा गया है। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें और मुहावरे बोलियों की समृद्धि को प्रदर्शित करते हैं।

बोलियों में उच्चारण, शब्दावली और वाक्य-रचना की दृष्टि से स्थानीय विशेषताएँ दिखाई देती हैं। इसी कारण एक ही भाषा-क्षेत्र के अलग-अलग स्थानों पर बोलचाल का रूप अलग हो सकता है।

बोली को भाषा का कम महत्त्वपूर्ण रूप नहीं समझना चाहिए। बोलियाँ भाषा को लोकजीवन से जोड़ती हैं और भाषिक विविधता को बनाए रखती हैं।

8.3.3 बोली की प्रमुख विशेषताएँ

बोली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. क्षेत्रीयता – इसका संबंध किसी विशेष क्षेत्र से होता है।

2. लोकप्रियता – इसका प्रयोग सामान्य जनजीवन में होता है।

3. मौखिकता – बोलियों का विकास लंबे समय तक मौखिक परंपरा के माध्यम से हुआ है।

4. स्थानीय शब्दावली – इनमें स्थानीय जीवन से जुड़े विशिष्ट शब्द मिलते हैं।

5. उच्चारण की विशिष्टता – एक ही शब्द का उच्चारण क्षेत्र के अनुसार बदल सकता है।

6. लोक-संस्कृति से संबंध – लोकगीतों, कथाओं और परंपराओं में बोली का विशेष स्थान है।

7. परिवर्तनशीलता – दूसरी भाषाओं और बोलियों के संपर्क से इनमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है।

8.3.4 हिन्दी क्षेत्र की बोलियाँ

हिन्दी क्षेत्र भाषिक दृष्टि से बहुत विस्तृत है। इसके विभिन्न क्षेत्रों में अनेक बोलियाँ और भाषा-रूप प्रचलित रहे हैं। ब्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली का हिन्दी साहित्य के विकास में विशेष महत्त्व रहा है।

ब्रजभाषा ने विशेष रूप से कृष्णभक्ति काव्य को समृद्ध किया। सूरदास आदि कवियों की रचनाओं के कारण इसका साहित्यिक महत्त्व अत्यधिक बढ़ा।

अवधी ने भक्तिकालीन साहित्य को समृद्ध किया। तुलसीदास की रामचरितमानस ने अवधी को व्यापक साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की।

खड़ी बोली आधुनिक मानक हिन्दी के विकास का प्रमुख आधार बनी। आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास तथा आगे चलकर आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में इसका प्रभाव व्यापक हुआ।

हिन्दी की बोलियों का वर्गीकरण भाषावैज्ञानिकों ने अलग-अलग आधारों पर किया है। इसलिए उनके वर्गीकरण को समझते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सभी विद्वानों के वर्गीकरण पूरी तरह समान नहीं हैं।

8.3.5 बोली का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

बोलियों का हिन्दी साहित्य के विकास में विशेष योगदान रहा है। अनेक महान साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के लिए क्षेत्रीय भाषा-रूपों का प्रयोग किया।

बोली साहित्य को–

स्थानीय जीवन से जोड़ती है।

पात्रों को स्वाभाविक बनाती है।

लोकसंस्कृति को अभिव्यक्ति देती है।

लोकानुभव को सुरक्षित रखती है।

भाषा को सहज और प्रभावपूर्ण बनाती है।

लोकगीतों और लोककथाओं में बोलियों का महत्त्व विशेष रूप से दिखाई देता है। विवाह, जन्म, त्योहार, कृषि, ऋतु और सामाजिक अवसरों से जुड़े अनेक लोकगीत आज भी विभिन्न बोलियों में प्रचलित हैं।

इसलिए बोलियों का संरक्षण साहित्य और संस्कृति दोनों के संरक्षण के लिए आवश्यक है।

8.3.6 बोली और भाषा का संबंध

भाषा और बोली के बीच घनिष्ठ संबंध है। बोली को भाषा से पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता। अनेक भाषाओं के विकास में क्षेत्रीय भाषा-रूपों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

बोली भाषा को स्थानीय शब्द और अभिव्यक्ति प्रदान करती है। दूसरी ओर, मानक भाषा का प्रभाव बोलियों पर भी पड़ता है। शिक्षा, प्रशासन और मीडिया के माध्यम से मानक भाषा के शब्द बोलियों में प्रवेश करते हैं।

इसलिए भाषा और बोली का संबंध पारस्परिक प्रभाव और विकास का संबंध है।

8.3.7 मानक भाषा : अर्थ एवं स्वरूप

भाषा के उस रूप को, जिसे व्यापक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो और जिसका प्रयोग शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, मीडिया तथा औपचारिक संचार में व्यवस्थित रूप से किया जाए, मानक भाषा कहा जाता है।

मानक भाषा में व्याकरण, वर्तनी और शब्द-प्रयोग की अपेक्षाकृत निश्चित परंपरा विकसित हो जाती है। इससे अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के बीच व्यापक संचार आसान होता है।

आधुनिक हिन्दी में मानक हिन्दी का प्रयोग विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, प्रशासन, समाचार माध्यमों और औपचारिक लेखन में व्यापक रूप से किया जाता है।

8.3.8 मानक भाषा की विशेषताएँ

मानक भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं–

1. व्यापक सामाजिक स्वीकृति।
2. व्यवस्थित व्याकरण।
3. अपेक्षाकृत निश्चित वर्तनी।
4. व्यापक क्षेत्र में प्रयोग।
5. शिक्षा में उपयोगिता।
6. प्रशासनिक कार्यों में सुविधा।
7. साहित्यिक प्रयोग की व्यापकता।

8. जनसंचार में उपयोगिता।

मानक भाषा पूरी तरह स्थिर नहीं होती। समय के साथ इसमें भी नए शब्द और प्रयोग शामिल होते रहते हैं।

8.3.9 मानक भाषा और बोली में अंतर

मानक भाषा का क्षेत्र सामान्यतः व्यापक होता है, जबकि बोली का प्रयोग किसी विशेष क्षेत्र या समुदाय में अधिक होता है।

मानक भाषा में व्याकरण और वर्तनी की अपेक्षाकृत निश्चित व्यवस्था होती है। बोली में स्थानीय प्रयोगों की प्रधानता होती है।

फिर भी दोनों को विरोधी नहीं माना जाना चाहिए। बोली मानक भाषा को लोकजीवन से जोड़ती है और मानक भाषा व्यापक संचार का माध्यम बनती है।

8.3.10 राष्ट्रभाषा और राजभाषा

राष्ट्रभाषा शब्द सामान्यतः उस भाषा की अवधारणा से जुड़ा है जिसे किसी राष्ट्र की व्यापक सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय पहचान के साथ जोड़ा जाता है।

राजभाषा वह भाषा है जिसका प्रयोग शासन और प्रशासन के कार्यों के लिए किया जाता है।

भारत के संदर्भ में दोनों शब्दों का अंतर विशेष रूप से समझना आवश्यक है। भारतीय संविधान ने किसी भाषा को "राष्ट्रभाषा" घोषित नहीं किया है। संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है।

अतः परीक्षा में यह लिखना उचित होगा–

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं, बल्कि संघ की राजभाषा है।

यह अंतर भाषिक और संवैधानिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

8.3.11 माध्यम भाषा एवं मातृभाषा: अर्थ एवं महत्त्व

जिस भाषा के माध्यम से विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में विषयों का शिक्षण किया जाता है, उसे माध्यम भाषा कहते हैं।

उदाहरण के लिए, यदि किसी विद्यार्थी को इतिहास, राजनीति विज्ञान और हिन्दी साहित्य की शिक्षा हिन्दी में दी जाती है, तो हिन्दी उसके लिए माध्यम भाषा है।

माध्यम भाषा का विद्यार्थी की समझ और अभिव्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है। जिस भाषा को विद्यार्थी सहज रूप से समझता है, उसमें विषय को ग्रहण करना कई परिस्थितियों में अधिक सरल हो सकता है।

माध्यम भाषा–

ज्ञान के संचार में सहायता करती है।

शिक्षक और विद्यार्थी के बीच संवाद स्थापित करती है।

विषय को समझने में सहायता करती है।

विचार व्यक्त करने का अवसर देती है।

शैक्षिक सामग्री के निर्माण का आधार बनती है।

जिस भाषा या भाषा-रूप को बच्चा अपने प्रारंभिक पारिवारिक और सामाजिक वातावरण से स्वाभाविक रूप से सीखता है, उसे सामान्यतः मातृभाषा कहा जाता है।

मातृभाषा का व्यक्ति के भावनात्मक और सांस्कृतिक जीवन से गहरा संबंध होता है। बच्चा परिवार के सदस्यों से बातचीत करते हुए केवल भाषा ही नहीं सीखता, बल्कि परिवार की परंपराएँ, व्यवहार और सांस्कृतिक मूल्य भी सीखता है।

मातृभाषा–

1. प्रारंभिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है।

2. परिवार से जोड़ती है।

3. सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करती है।

4. लोकपरंपराओं को आगे बढ़ाती है।

5. प्रारंभिक ज्ञान और अनुभवों को व्यवस्थित करने में सहायता करती है।

- दोनों में परस्पर सम्बन्ध (मातृभाषा और माध्यम भाषा)

मातृभाषा और माध्यम भाषा एक ही हों, यह आवश्यक नहीं है।

किसी बच्चे की मातृभाषा किसी क्षेत्रीय बोली या भाषा-रूप में हो सकती है, जबकि विद्यालय में शिक्षा मानक हिन्दी या किसी अन्य भाषा के माध्यम से दी जा सकती है।

इस स्थिति में विद्यार्थी को दो अलग भाषिक वातावरणों के बीच समन्वय करना पड़ता है। यदि शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थी की परिचित भाषा को उचित महत्त्व देती है और साथ-साथ मानक भाषा का ज्ञान विकसित करती है, तो भाषिक विकास अधिक संतुलित हो सकता है।

इसलिए मातृभाषा और माध्यम भाषा को परस्पर विरोधी न मानकर पूरक रूप में देखना चाहिए । इन सभी रूपों की अपनी उपयोगिता है। एक व्यक्ति अपने जीवन में एक से अधिक भाषा-रूपों का प्रयोग कर सकता है।

- आधुनिक समय में भाषा के विविध रूप

आज तकनीक और जनसंचार के विकास ने भाषा के प्रयोग को व्यापक बना दिया है। मोबाइल, इंटरनेट, सोशल मीडिया और ऑनलाइन शिक्षा के कारण व्यक्ति अलग-अलग भाषाओं और भाषा-रूपों के संपर्क में आता है।

डिजिटल माध्यम बोलियों के लिए भी नए अवसर उपलब्ध कराते हैं। लोकगीत, लोककथाएँ और क्षेत्रीय साहित्य अब ऑडियो, वीडियो और डिजिटल लेखन के माध्यम से सुरक्षित किए जा सकते हैं।

दूसरी ओर, अत्यधिक मानकीकरण और दूसरी भाषाओं के बढ़ते प्रभाव के कारण कुछ स्थानीय भाषा-रूपों के सामने संरक्षण की चुनौती भी है।
इसलिए आधुनिक समय में आवश्यकता है कि मानक भाषा के विकास के साथ-साथ क्षेत्रीय बोलियों और मातृभाषाओं का भी सम्मान एवं संरक्षण किया जाए।

भाषा मानव जीवन की आधारभूत सामाजिक व्यवस्था है। इसके विभिन्न रूप व्यक्ति और समाज की अलग-अलग आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। बोली भाषा को स्थानीय जीवन और लोकसंस्कृति से जोड़ती है। मानक भाषा व्यापक और औपचारिक संचार को व्यवस्थित करती है। मातृभाषा व्यक्ति को उसके प्रारंभिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश से जोड़ती है तथा माध्यम भाषा शिक्षा और ज्ञान के संचार का साधन बनती है।

राष्ट्रभाषा और राजभाषा को समान अर्थ में प्रयोग नहीं करना चाहिए। भारत के संविधान में हिन्दी को संघ की राजभाषा का स्थान प्राप्त है, जबकि किसी भाषा को राष्ट्रभाषा घोषित नहीं किया गया है।

इस प्रकार भाषा के विविध रूप परस्पर जुड़े हुए हैं। इन सभी के संतुलित विकास से भाषिक विविधता, सांस्कृतिक समृद्धि और प्रभावी संचार को बढ़ावा मिलता है।

8.4 अपनी प्रगति जाँचें

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. भाषा से क्या अभिप्राय है?

2. भाषा की कोई चार प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

3. भाषा और समाज का क्या संबंध है?

4. बोली किसे कहते हैं?

5. बोली और मानक भाषा में दो अंतर बताइए।

6. मानक भाषा की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

7. राष्ट्रभाषा और राजभाषा में क्या अंतर है

8. भारत के संदर्भ में हिन्दी की संवैधानिक स्थिति स्पष्ट कीजिए।

9. माध्यम भाषा का शिक्षा के क्षेत्र में क्या महत्त्व है?

10. मातृभाषा व्यक्ति के विकास में किस प्रकार सहायक होती है?

8.5 सारांश

भाषा मनुष्य के सामाजिक जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों, भावनाओं, अनुभवों और ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाता है। भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज, संस्कृति और व्यक्ति के बीच संबंध स्थापित करने का भी कार्य करती है।

भाषा का स्वरूप स्थिर नहीं होता। समय, स्थान, समाज और परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है। इसी कारण अलग-अलग क्षेत्रों और समुदायों में भाषा के अनेक स्थानीय रूप विकसित होते हैं, जिन्हें सामान्यतः बोलियाँ कहा जाता है। बोलियाँ किसी क्षेत्र की लोक-संस्कृति, परंपरा और सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त करती हैं।

व्यापक सामाजिक, शैक्षिक, साहित्यिक और प्रशासनिक आवश्यकताओं के कारण भाषा का एक अपेक्षाकृत निश्चित और सर्वमान्य रूप विकसित होता है, जिसे मानक भाषा कहा जाता है। मानक भाषा और बोलियाँ एक-दूसरे की विरोधी नहीं हैं। बोलियाँ भाषा को जीवंत और समृद्ध बनाती हैं, जबकि मानक भाषा व्यापक संचार के लिए उपयोगी आधार प्रदान करती है।

राष्ट्रभाषा और राजभाषा दो अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। राष्ट्रभाषा का संबंध राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पहचान से और राजभाषा का संबंध शासन-व्यवस्था से है। भारत के संविधान में हिन्दी को संघ की राजभाषा माना गया है; संविधान हिन्दी को भारत की "राष्ट्रभाषा" घोषित नहीं करता। अनुच्छेद 351 हिन्दी के प्रसार और विकास का निर्देश देता है।

माध्यम भाषा शिक्षा और ज्ञान-वितरण का साधन है, जबकि मातृभाषा व्यक्ति के प्रारंभिक भाषायी और भावात्मक विकास से जुड़ी होती है। दोनों की भूमिकाएँ अलग होते हुए भी शिक्षा की प्रक्रिया में उनका गहरा संबंध है।

इस प्रकार भाषा के विभिन्न रूप–बोली, मानक भाषा, राजभाषा, माध्यम भाषा और मातृभाषा– अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं। इन सभी को समझना भाषा के व्यापक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है।

8.6 मुख्य शब्द एवं अर्थ

1. भाषा – विचारों और भावों को व्यक्त करने तथा संप्रेषित करने का सामाजिक माध्यम।

2. बोली – किसी विशेष क्षेत्र या समुदाय में प्रचलित भाषा का स्थानीय रूप।

3. मानक भाषा – व्यापक रूप से स्वीकृत तथा अपेक्षाकृत निश्चित व्याकरण, शब्दावली और प्रयोग वाली भाषा।

4. राजभाषा – शासन और सरकारी कार्यों में प्रयुक्त भाषा।

5. राष्ट्रभाषा – राष्ट्रीय पहचान और सांस्कृतिक एकता से संबंधित भाषा की संकल्पना।

6. मातृभाषा – व्यक्ति द्वारा अपने प्रारंभिक सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश में सीखी जाने वाली भाषा।

7. माध्यम भाषा – शिक्षा अथवा ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रयुक्त भाषा।

8. संप्रेषण – विचार, सूचना या भाव को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचाने की प्रक्रिया।

9. भाषिक विविधता – विभिन्न भाषाओं और उनके रूपों की उपस्थिति।

10. मानकीकरण – भाषा के व्याकरण, वर्तनी और प्रयोग को अपेक्षाकृत निश्चित एवं सर्वमान्य बनाने की प्रक्रिया।

11. भाषिक समुदाय – ऐसी सामाजिक इकाई जिसके सदस्य किसी भाषा या भाषायी रूप का साझा प्रयोग करते हैं।

12. भाषिक परिवर्तन – समय और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार भाषा में होने वाला परिवर्तन।

8.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप एवं प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

2. भाषा और समाज के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट कीजिए।

3. बोली और मानक भाषा में अंतर स्पष्ट करते हुए दोनों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

4. राष्ट्रभाषा और राजभाषा की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए तथा भारत में हिन्दी की संवैधानिक स्थिति बताइए।

5. मातृभाषा और माध्यम भाषा में अंतर स्पष्ट करते हुए शिक्षा के क्षेत्र में दोनों के महत्त्व की चर्चा कीजिए।

संकेतात्मक उत्तर

1. उत्तर में भाषा की संकल्पना, सामाजिक स्वरूप, संप्रेषणात्मकता, परिवर्तनशीलता, परंपरागत स्वरूप तथा विचार एवं संस्कृति से संबंध की चर्चा की जानी चाहिए।

2. भाषा समाज से जन्म लेती है और समाज के परिवर्तन के साथ बदलती है। सामाजिक संबंध, व्यवसाय, शिक्षा, संस्कृति और तकनीकी विकास भाषा को प्रभावित करते हैं।

3. बोली क्षेत्रीय और स्थानीय प्रयोग से जुड़ी होती है, जबकि मानक भाषा व्यापक संचार के लिए स्वीकृत रूप होती है। दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं।

4. राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पहचान से संबंधित अवधारणा है और राजभाषा शासन-व्यवस्था से। भारत में हिन्दी संघ की राजभाषा है; इसे संविधान ने राष्ट्रभाषा घोषित नहीं किया है। अनुच्छेद 343 हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में निर्दिष्ट करता है।

5. मातृभाषा व्यक्ति की प्रारंभिक भाषायी पहचान से जुड़ी है, जबकि माध्यम भाषा शिक्षा में ज्ञान प्रदान करने का साधन है। उपयुक्त मातृभाषायी वातावरण प्रारंभिक सीखने में विशेष रूप से सहायक हो सकता है।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा की दो विशेषताएँ लिखिए।

2. बोली का एक उदाहरण दीजिए।

3. मानक भाषा क्यों आवश्यक है?

4. राजभाषा किसे कहते हैं?

5. मातृभाषा का क्या महत्त्व है?

6. माध्यम भाषा से क्या अभिप्राय है?

7. भाषा और संस्कृति का क्या संबंध है?

8. भाषा परिवर्तनशील क्यों होती है?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी का प्रावधान किस अनुच्छेद में है?
(क) 340
(ख) 343
(ग) 350
(घ) 351

उत्तर – (ख) 343

2. हिन्दी के विकास के लिए निर्देश किस अनुच्छेद में दिया गया है?

(क) 345

(ख) 348

(ग) 351

(घ) 356

उत्तर – (ग) 351

3. किसी क्षेत्र विशेष में प्रचलित भाषा के स्थानीय रूप को क्या कहा जाता है?

(क) मानक भाषा

(ख) बोली

(ग) राजभाषा

(घ) माध्यम भाषा

उत्तर – (ख) बोली

4. शिक्षा में विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने वाली भाषा कहलाती है–

(क) मातृभाषा

(ख) बोली

(ग) माध्यम भाषा

(घ) लोकभाषा

उत्तर – (ग) माध्यम भाषा

5. व्यक्ति के प्रारंभिक भाषायी परिवेश से जुड़ी भाषा कहलाती है–

(क) मातृभाषा

(ख) राजभाषा

(ग) मानक भाषा

(घ) संपर्क भाषा

उत्तर – (क) मातृभाषा

8.8 अपनी प्रगति जांचे के उत्तर

1. भाषा से क्या अभिप्राय है?

भाषा मनुष्य द्वारा अपने विचारों, भावों, अनुभवों और सूचनाओं को व्यक्त तथा दूसरों तक पहुँचाने के लिए प्रयुक्त सामाजिक संप्रेषण-व्यवस्था है।

2. भाषा की चार प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

भाषा सामाजिक, परिवर्तनशील, परंपरागत तथा संप्रेषणात्मक होती है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों और भावों को व्यक्त करता है।

3. भाषा और समाज का क्या संबंध है?

भाषा का विकास समाज के साथ होता है। सामाजिक जीवन में होने वाले परिवर्तन भाषा के शब्द-भंडार, प्रयोग और अभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं।

4. बोली किसे कहते हैं?

किसी विशेष क्षेत्र या समुदाय में प्रचलित भाषा के स्थानीय रूप को सामान्यतः बोली कहा जाता है।

5. बोली और मानक भाषा में दो अंतर बताइए।

बोली का प्रयोग प्रायः सीमित क्षेत्र में होता है, जबकि मानक भाषा का प्रयोग व्यापक क्षेत्र में किया जाता है। मानक भाषा के व्याकरण, वर्तनी और शब्द-प्रयोग में अपेक्षाकृत अधिक स्थिरता होती है।

6. मानक भाषा की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, संचार और व्यापक सामाजिक व्यवहार में एकरूपता बनाए रखने के लिए मानक भाषा आवश्यक होती है।

7. राष्ट्रभाषा और राजभाषा में क्या अंतर है?

राष्ट्रभाषा की संकल्पना किसी राष्ट्र की व्यापक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी होती है, जबकि राजभाषा का संबंध शासन और सरकारी कार्यों से होता है।

8. भारत के संदर्भ में हिन्दी की संवैधानिक स्थिति स्पष्ट कीजिए।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार हिन्दी देवनागरी लिपि में संघ की राजभाषा है। अतः हिन्दी को संविधान में "राष्ट्रभाषा" के रूप में घोषित नहीं किया गया है। संघ के सरकारी कार्यों में अंग्रेजी के प्रयोग के संबंध में भी विधिक प्रावधान हैं।

9. माध्यम भाषा का शिक्षा के क्षेत्र में क्या महत्त्व है?

माध्यम भाषा वह भाषा है जिसके द्वारा विद्यालय या महाविद्यालय में विषय-वस्तु विद्यार्थियों तक पहुँचाई जाती है। उपयुक्त माध्यम भाषा समझ, अभिव्यक्ति और सीखने की प्रक्रिया को सरल बनाती है।

10. मातृभाषा व्यक्ति के विकास में किस प्रकार सहायक होती है?

मातृभाषा व्यक्ति के प्रारंभिक विचार-विकास, भाव-अभिव्यक्ति, सामाजिक जुड़ाव और सांस्कृतिक पहचान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 भोलानाथ तिवारी – भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबा

2. डॉ. हरदेव बाहरी – हिन्दी भाषा, किताब महल, प्रयागराज।

3. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा – हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज।

4. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी – भाषा-विज्ञान एवं हिन्दी भाषा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

5. डॉ. रामविलास शर्मा – भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

6 देवेन्द्रनाथ शर्मा – भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन।

7. उदयनारायण तिवारी – हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, लोकभारती प्र

7. विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्नातक स्तर की हिन्दी एवं भाषाविज्ञान संबंधी अध्ययन-सामग्री।

कोर्ड कोड : C24HIN101T	लेखक : मीना रानी
अध्याय संख्या : 9	Vetter : Dr. कमलेश देवी
इकाई - 4 मानक भाषा की परिभाषा एवं प्रवृतियां	

9 मानक भाषा की परिभाषा एवं प्रवृतियां

9.0 अधिगम उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 पाठ का मुख्य भाग

9.2.1 मानक भाषा ; अर्थ एवं अवधारणा

9.2,2 मानक भाषा की परिभाषा

9.2.3 मानक भाषा और बोली का सम्बन्ध

9.2.4 मानक भाषा की आवश्यकता एवं महत्व

9.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

9.3.1 मानक भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

i) एकरूपता की प्रवृत्ति

ii) व्याकरण-सम्मतता की प्रवृति

iii) सर्वग्राह्यता एवं बोधगम्यता की प्रवृति

iv) स्थिरता और परिवर्तनशीलता का समन्वय

(v) औपचारिक एवं व्यापक प्रयोग की प्रवृत्ति

(vi) शब्द-ग्रहण एवं शब्द-निर्माण की प्रवृत्ति

(vii) आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक के अनुरूप विकास

(viii) मानक भाषा और भाषिक विविधता

(viii) डिजिटल युग में मानक भाषा की प्रवृत्तियाँ

9.3.2 वर्तमान समय में मानक भाषा की उपयोगिता

9.3.3 मानक हिन्दी के विकास में शिक्षा, साहित्य और जनसंचार की भूमिका

9.3.4 मानक भाषा के विकास के लिए आवश्यक सुझाव

9.4 अपनी प्रगति जाँचें

9.5 सारांश

9.6 मुख्य शब्द

9.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

9.8 अपनी प्रगति जाँचें के उत्तर

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

मानक भाषा की परिभाषा तथा मानक भाषा की प्रवृत्तियाँ

9.0 अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी–

1. मानक भाषा के अर्थ एवं स्वरूप को समझ सकेंगे।

2. मानक भाषा की प्रमुख विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे।

3. मानक भाषा और बोली के संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे।

4. मानक भाषा की आवश्यकता एवं महत्त्व को समझ सकेंगे।

5. मानक भाषा की विभिन्न प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

6. मानकीकरण की प्रक्रिया और उसके प्रमुख आधारों को समझ सकेंगे।

7. मानक हिन्दी के विकास में शिक्षा, साहित्य, प्रशासन तथा जनसंचार माध्यमों की भूमिका को समझ सकेंगे।

8. भाषिक विविधता और मानक भाषा के बीच संतुलन की आवश्यकता को पहचान सकेंगे।

9. आधुनिक समय में मानक भाषा के बदलते स्वरूप को समझ सकेंगे।

10. भाषा के व्यावहारिक एवं सामाजिक संदर्भों में मानक भाषा के महत्त्व का मूल्यांकन कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

भाषा मनुष्य के विचारों, भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करने का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम है। मनुष्य अपने दैनिक जीवन में भाषा का प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में करता है। परिवार, मित्रों और स्थानीय समुदाय में भाषा का प्रयोग प्रायः सहज एवं स्वाभाविक रूप में

होता है। अलग-अलग क्षेत्रों में एक ही भाषा के उच्चारण, शब्दावली, वाक्य-विन्यास तथा प्रयोग में अंतर दिखाई दे सकता है। यही विविधता भाषा को समृद्ध और जीवंत बनाती है।

किसी भाषा का प्रयोग जब व्यापक सामाजिक क्षेत्र में होने लगता है तो उसके सामने एकरूपता की आवश्यकता भी उत्पन्न होती है। शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, समाचार-पत्र, संचार, विज्ञान, तकनीक तथा औपचारिक लेखन में यदि भाषा के रूप अलग-अलग हों, तो संप्रेषण में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति में भाषा के किसी स्वीकृत और व्यापक रूप को आधार बनाया जाता है। इस स्वीकृत रूप को सामान्यतः मानक भाषा कहा जाता है।

मानक भाषा का अर्थ केवल ऐसी भाषा से नहीं है जिसमें कोई त्रुटि न हो। मानक भाषा एक सामाजिक रूप से स्वीकृत, व्यवस्थित और व्यापक रूप से प्रयुक्त भाषिक रूप है। इसके प्रयोग में व्याकरण, वर्तनी, उच्चारण, शब्दावली तथा वाक्य-विन्यास आदि के कुछ अपेक्षाकृत स्थिर नियमों का पालन किया जाता है।

हिन्दी के संदर्भ में मानक भाषा का विशेष महत्त्व है। हिन्दी का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और इसके अंतर्गत अनेक बोलियाँ तथा क्षेत्रीय भाषिक रूप पाए जाते हैं। इन विविध रूपों के बीच संचार की व्यापक आवश्यकता ने हिन्दी के एक ऐसे रूप को विकसित किया, जिसका प्रयोग शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, मीडिया और अन्य औपचारिक क्षेत्रों में किया जाता है।

मानक भाषा स्थिर और अपरिवर्तनशील नहीं होती। समाज के बदलने के साथ भाषा भी बदलती है। नए विचारों, वैज्ञानिक उपलब्धियों, तकनीकी विकास और सामाजिक परिवर्तन के कारण भाषा में नए शब्द और नए प्रयोग आते रहते हैं। इसलिए मानक भाषा में परंपरा और परिवर्तन दोनों का संतुलन दिखाई देता है।

इस अध्याय में हम मानक भाषा की अवधारणा, परिभाषा, विशेषताओं, आवश्यकता, महत्त्व तथा उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तार से अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी समझेंगे कि मानक भाषा का संबंध बोलियों और भाषिक विविधता से किस प्रकार है।

9.2 पाठ का मुख्य भाग

9.2.1 मानक भाषा : अर्थ एवं अवधारणा

'मानक' शब्द का सामान्य अर्थ है–किसी कार्य या व्यवस्था के लिए स्वीकार किया गया आदर्श अथवा निर्धारित रूप। जब यह शब्द भाषा के साथ प्रयुक्त होता है तो इसका आशय

भाषा के उस रूप से होता है जिसे किसी भाषिक समुदाय में व्यापक रूप से स्वीकार्यता प्राप्त हो तथा जिसका प्रयोग विशेष रूप से औपचारिक और सार्वजनिक क्षेत्रों में किया जाता हो। मानक भाषा को समझने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रत्येक भाषा में विविध रूप होते हैं। एक ही भाषा बोलने वाले लोग अलग-अलग क्षेत्रों में अलग उच्चारण, शब्द और वाक्य-रचना का प्रयोग कर सकते हैं। इन क्षेत्रीय रूपों को सामान्यतः बोलियों या उपभाषाओं के रूप में देखा जाता है। जब भाषा का कोई रूप व्यापक संपर्क, शिक्षा, साहित्य, प्रशासन और सार्वजनिक संचार का माध्यम बनता है, तो उसमें एक प्रकार की मानकीकरण प्रक्रिया विकसित होती है।

उदाहरण के लिए, हिन्दी भाषी क्षेत्रों में अनेक बोलियाँ प्रचलित हैं। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, हरियाणवी, बघेली आदि के अपने-अपने भाषिक रूप और सांस्कृतिक महत्त्व हैं। इनके बीच संपर्क और व्यापक संचार के लिए जिस हिन्दी रूप का प्रयोग शिक्षा, प्रशासन तथा औपचारिक लेखन में किया जाता है, उसे मानक हिन्दी के रूप में समझा जाता है।

मानक भाषा की अवधारणा के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक स्वीकृति

किसी भाषिक रूप के मानक बनने के लिए समाज में उसकी स्वीकृति आवश्यक है। केवल किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा किसी रूप को मानक घोषित कर देने से वह स्वतः मानक नहीं बन जाता। उसके प्रयोग को व्यापक समाज में स्वीकार्यता मिलनी चाहिए।

2. व्यापक प्रयोग

मानक भाषा का प्रयोग केवल एक छोटे क्षेत्र या समुदाय तक सीमित नहीं रहता। इसका उपयोग शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, मीडिया और सार्वजनिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में होता है।

3. व्याकरणिक व्यवस्था

मानक भाषा में व्याकरण की अपेक्षाकृत व्यवस्थित संरचना होती है। शब्दों के रूप, वाक्य-रचना, लिंग, वचन, कारक, काल आदि के प्रयोग में सामान्य नियमों का पालन किया जाता है।

4. लेखन एवं वर्तनी की एकरूपता

मानक भाषा के विकास में वर्तनी की एकरूपता का विशेष महत्त्व है। यदि एक ही शब्द को अलग-अलग प्रकार से लिखा जाए तो पाठक के लिए भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

5. औपचारिक प्रयोग

मानक भाषा का प्रयोग औपचारिक परिस्थितियों में अधिक होता है। विद्यालय, विश्वविद्यालय, सरकारी कार्यालय, न्यायिक व्यवस्था, समाचार माध्यम तथा अकादमिक लेखन इसके प्रमुख क्षेत्र हैं।

इस प्रकार मानक भाषा किसी भाषा का ऐसा स्वीकृत रूप है जो व्यापक संचार और औपचारिक प्रयोग की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

9.2.2 मानक भाषा की परिभाषा

मानक भाषा की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित करना सरल नहीं है, क्योंकि विभिन्न भाषाविदों ने इसे अलग-अलग दृष्टिकोणों से समझाया है। फिर भी सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि–

"मानक भाषा किसी भाषिक समुदाय द्वारा व्यापक रूप से स्वीकृत और सामाजिक, शैक्षिक तथा औपचारिक संचार के लिए प्रयुक्त भाषा का अपेक्षाकृत व्यवस्थित रूप है।"

दूसरे शब्दों में, जिस भाषिक रूप को समाज के शिक्षित और औपचारिक क्षेत्रों में सामान्यतः स्वीकार किया जाता है तथा जिसके प्रयोग के लिए व्याकरण, वर्तनी और शब्दावली संबंधी कुछ स्थापित मानदंड उपलब्ध होते हैं, उसे मानक भाषा कहा जा सकता है।

मानक भाषा की परिभाषा को समझते समय दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

पहली, मानक भाषा को केवल 'शुद्ध भाषा' मानना उचित नहीं है।

दूसरी, मानक भाषा किसी बोली या अन्य भाषिक रूप को गलत सिद्ध करने के लिए नहीं होती।

भाषा के अनेक रूप अपने-अपने सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में महत्त्वपूर्ण होते हैं। मानक भाषा का उद्देश्य मुख्यतः व्यापक और औपचारिक संचार के लिए एक अपेक्षाकृत साझा रूप उपलब्ध कराना है।

मानक भाषा की परिभाषा को समझने के प्रमुख आधार

(क) स्वीकृति – समाज में व्यापक स्वीकार्यता।

(ख) व्यवस्था – व्याकरण और प्रयोग में अपेक्षाकृत निश्चितता।

(ग) व्यापकता – अनेक क्षेत्रों और परिस्थितियों में प्रयोग।

(घ) उपयोगिता – शिक्षा, प्रशासन, साहित्य और संचार में उपयोग।

(ङ) परिवर्तनशीलता – समय के साथ आवश्यकतानुसार परिवर्तन को स्वीकार करना।

इसलिए मानक भाषा को एक जीवंत और विकासशील भाषिक व्यवस्था के रूप में देखना अधिक उचित है।

9.2.3 मानक भाषा और बोली का संबंध

भाषा और बोली का संबंध अत्यंत निकट है। सामान्यतः बोली को भाषा का क्षेत्रीय अथवा सामाजिक रूप माना जाता है। बोलियाँ किसी भाषा की जीवंतता और विविधता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

मानक भाषा और बोली को एक-दूसरे का विरोधी मानना उचित नहीं है। दोनों के बीच निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है। अनेक शब्द, मुहावरे और अभिव्यक्तियाँ बोलियों से मानक भाषा में आती हैं। साहित्यकार भी स्थानीय बोलियों के शब्दों और प्रयोगों का उपयोग करके मानक भाषा को अधिक प्रभावशाली बनाते हैं।

मानक भाषा और बोली के संबंध की प्रमुख बातें

1. बोलियाँ भाषा को जीवंत बनाती हैं।

2. मानक भाषा व्यापक संचार में सहायता करती है।

3. बोलियाँ मानक भाषा को शब्द और अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं।

4. मानक भाषा विभिन्न भाषिक क्षेत्रों के बीच संपर्क स्थापित करती है।

5. दोनों का विकास एक-दूसरे से प्रभावित होता है।

उदाहरण के लिए, हिन्दी साहित्य में ब्रज और अवधी के योगदान को अलग करके नहीं देखा जा सकता। भक्ति और रीतिकालीन साहित्य की अनेक महत्वपूर्ण रचनाओं ने हिन्दी की अभिव्यक्ति को समृद्ध किया। आधुनिक समय में भी विभिन्न बोलियों के शब्द, मुहावरे और लोक-अभिव्यक्तियाँ हिन्दी को अधिक प्रभावशाली बनाती हैं।

इस प्रकार मानक भाषा और बोलियाँ एक व्यापक भाषिक व्यवस्था के अलग-अलग पक्ष हैं।

9.2.4 मानक भाषा की आवश्यकता एवं महत्त्व

आधुनिक समाज में भाषा का प्रयोग व्यक्तिगत बातचीत से कहीं अधिक व्यापक क्षेत्रों में होता है। शिक्षा, शासन, न्याय, विज्ञान, तकनीक, व्यापार और जनसंचार जैसे क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लोगों के बीच संचार स्थापित करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में भाषा के एक अपेक्षाकृत व्यवस्थित और व्यापक रूप की आवश्यकता होती है।

1. व्यापक संचार का माध्यम

मानक भाषा अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के बीच संचार को सरल बनाती है। विभिन्न बोलियों को बोलने वाले व्यक्ति भी एक साझा भाषिक रूप के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं।

2. शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगिता

विद्यालय और विश्वविद्यालय में पाठ्य-पुस्तकों, प्रश्न-पत्रों, शोध-कार्य और शैक्षिक सामग्री के लिए एक अपेक्षाकृत एकरूप भाषा आवश्यक होती है। मानक भाषा इस आवश्यकता को पूरा करती है।

3. प्रशासनिक कार्यों में महत्त्व

सरकारी आदेश, अधिसूचनाएँ, कार्यालयी पत्राचार और अन्य प्रशासनिक दस्तावेज ऐसी भाषा में तैयार किए जाते हैं जिसे व्यापक रूप से समझा जा सके। मानक भाषा इस दृष्टि से उपयोगी है।

4. साहित्यिक अभिव्यक्ति

मानक भाषा साहित्य के व्यापक प्रसार में सहायक होती है। किसी रचना को विभिन्न क्षेत्रों के पाठकों तक पहुँचाने में साझा भाषिक रूप की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

5. जनसंचार में उपयोग

समाचार-पत्र, रेडियो, टेलीविजन तथा डिजिटल माध्यमों में ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है जिसे बड़ी संख्या में लोग समझ सकें। इसलिए मानक भाषा का प्रयोग जनसंचार में महत्त्वपूर्ण है।

6. ज्ञान-विज्ञान के विकास में योगदान

वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के प्रसार के लिए स्पष्ट एवं व्यवस्थित भाषा आवश्यक है। मानक भाषा में नए वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों को व्यवस्थित रूप से अपनाने की क्षमता होती है।

7. राष्ट्रीय एवं सामाजिक संपर्क

बहुभाषी और बहुबोली समाज में कोई व्यापक संपर्क-भाषिक रूप विभिन्न समुदायों के बीच संवाद को सुविधाजनक बना सकता है। मानक भाषा इस संपर्क में सहायक भूमिका निभाती है।

9.3 पाठ के आगे का मुख्य भाग

9.3.1 मानक भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

मानक भाषा एक निश्चित समय पर निर्मित होकर हमेशा के लिए स्थिर नहीं हो जाती। समाज में परिवर्तन के साथ उसकी प्रकृति और प्रयोग भी बदलते रहते हैं। मानक भाषा की कुछ प्रवृत्तियाँ अपेक्षाकृत स्थिर होती हैं, जबकि कुछ समय, समाज और संचार की आवश्यकताओं के अनुसार विकसित होती रहती हैं।

मानक भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है–

(I) एकरूपता की प्रवृत्ति

(II). व्याकरण-सम्मतता की प्रवृत्ति

(III) सर्वग्राह्यता एवं बोधगम्यता की प्रवृत्ति

(IV) स्थिरता और परिवर्तनशीलता का समन्वय

(V) . औपचारिक एवं व्यापक प्रयोग की प्रवृत्ति

(VI) शब्द-ग्रहण एवं शब्द-निर्माण की प्रवृत्ति

(VII) ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक के अनुरूप विकास

(VIII) भाषिक विविधता के साथ सह-अस्तित्व

इन प्रवृत्तियों को आगे विस्तार से समझना आवश्यक है।

(I) एकरूपता की प्रवृत्ति

मानक भाषा की एक प्रमुख प्रवृत्ति एकरूपता है। एकरूपता का अर्थ यह नहीं है कि भाषा के प्रत्येक शब्द का प्रयोग हर व्यक्ति बिल्कुल एक ही ढंग से करे। इसका आशय मुख्यतः उन क्षेत्रों में समानता से है जहाँ भाषा के व्यवस्थित और औपचारिक प्रयोग की आवश्यकता होती है।

उदाहरण के लिए, किसी शब्द की वर्तनी यदि अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग लिखी जाए तो लिखित संचार में भ्रम हो सकता है। इसी प्रकार व्याकरणिक रूपों में अत्यधिक विविधता भी औपचारिक संचार को कठिन बना सकती है।

एकरूपता के प्रमुख क्षेत्र

वर्तनी

व्याकरण

शब्द-रूप

विराम-चिह्न

तकनीकी शब्दावली

औपचारिक लेखन

प्रशासनिक भाष

एकरूपता से पाठक और लेखक दोनों के लिए संचार अधिक स्पष्ट बनता है।
हालाँकि, मानक भाषा में एकरूपता का अर्थ भाषिक विविधता का समाप्त हो जाना नहीं है। बोलियों और क्षेत्रीय रूपों का अपना महत्त्व बना रहता है।

(ii) व्याकरण-सम्मतता की प्रवृत्ति

मानक भाषा का दूसरा महत्त्वपूर्ण आधार व्याकरण-सम्मतता है। भाषा के व्यवस्थित प्रयोग के लिए व्याकरणिक नियमों का ज्ञान आवश्यक है। वाक्य में शब्दों का उचित क्रम, लिंग-वचन का सामंजस्य, काल का उचित प्रयोग और वाक्य-रचना की स्पष्टता मानक भाषा के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं।

उदाहरण के लिए–

“बच्चे विद्यालय जा रहे हैं।”

इस वाक्य में कर्ता और क्रिया के बीच उचित सामंजस्य है।

इसके विपरीत यदि व्याकरणिक संबंधों की उपेक्षा की जाए तो वाक्य की स्पष्टता प्रभावित हो सकती है।

मानक भाषा में व्याकरण का उद्देश्य भाषा को कठोर बनाना नहीं है। व्याकरण भाषा के प्रयोग को व्यवस्थित करने का साधन है। भाषा का वास्तविक जीवन में प्रयोग लगातार नए रूप ग्रहण करता है; इसलिए व्याकरण और भाषा-प्रयोग के बीच संतुलन आवश्यक है।

(iii) सर्वग्राह्यता एवं बोधगम्यता की प्रवृत्ति

मानक भाषा का एक महत्त्वपूर्ण गुण उसकी बोधगम्यता है। ऐसी भाषा जिसे व्यापक समाज आसानी से समझ सके, संचार के लिए अधिक उपयोगी होती है।

मानक भाषा में अत्यधिक स्थानीय या अत्यंत सीमित शब्दों के स्थान पर ऐसे शब्दों को प्राथमिकता मिल सकती है जिन्हें व्यापक क्षेत्र में समझा जा सके। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्थानीय शब्दों का कोई महत्त्व नहीं है। साहित्य, लोक-संस्कृति और रचनात्मक लेखन में स्थानीय शब्दों का प्रयोग भाषा को समृद्ध करता है।

सर्वग्राह्यता का संबंध भाषा की व्यापक सामाजिक पहुँच से है। शिक्षा और जनसंचार की भाषा में स्पष्टता तथा सहजता इसलिए आवश्यक है कि संदेश अधिकाधिक लोगों तक प्रभावी रूप से पहुँच सके।

(iv) स्थिरता और परिवर्तनशीलता का समन्वय

मानक भाषा की एक विशेष प्रवृत्ति स्थिरता और परिवर्तनशीलता के बीच संतुलन बनाए रखना है। यदि भाषा में कोई स्थिरता न हो तो उसके नियम और रूप बार-बार बदलते रहेंगे और संचार कठिन हो सकता है। दूसरी ओर यदि भाषा परिवर्तन को पूरी तरह अस्वीकार कर दे तो वह समाज की नई आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाई अनुभव करेगी।

समाज में विज्ञान, तकनीक, शिक्षा, मीडिया और जीवन-शैली के परिवर्तन के साथ नए शब्द आते हैं। जैसे कंप्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल, डिजिटल, ऑनलाइन आदि शब्द आधुनिक संचार के सामान्य शब्द-संसार का हिस्सा बन चुके हैं।

इस प्रकार मानक भाषा परंपरा को बनाए रखते हुए नए प्रयोगों को भी आवश्यकतानुसार स्वीकार करती है।

(v) औपचारिक एवं व्यापक प्रयोग की प्रवृत्ति

मानक भाषा का प्रयोग विशेष रूप से औपचारिक परिस्थितियों में होता है। शिक्षा, प्रशासन, सरकारी कामकाज, अकादमिक लेखन और सार्वजनिक संचार इसके प्रमुख क्षेत्र हैं।

घर में या मित्रों के बीच व्यक्ति स्थानीय बोली का प्रयोग कर सकता है, जबकि किसी विश्वविद्यालय के आवेदन, सरकारी पत्र या औपचारिक लेख में वह मानक भाषा का प्रयोग करता है।

इस प्रकार व्यक्ति परिस्थिति के अनुसार भाषा के अलग-अलग रूपों का चयन करता है। यह भाषिक व्यवहार समाज की बहुरूपता को दर्शाता है।

(vi) शब्द-ग्रहण एवं शब्द-निर्माण की प्रवृत्ति

कोई भी भाषा पूर्णतः बंद व्यवस्था नहीं होती। वह अन्य भाषाओं और भाषिक समुदायों के संपर्क में आती रहती है। परिणामस्वरूप उसमें नए शब्द जुड़ते हैं।

हिन्दी ने अपने विकासक्रम में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं से अनेक शब्द ग्रहण किए हैं। आधुनिक समय में तकनीकी और वैश्विक संपर्क के कारण अंग्रेजी सहित अनेक भाषाओं से नए शब्द हिन्दी प्रयोग में आए हैं।

मानक भाषा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि नए शब्दों को किस प्रकार अपनाया जाए और उनका प्रयोग किस रूप में व्यवस्थित किया जाए।

इसके साथ-साथ भाषा में नए शब्दों का निर्माण भी होता है। वैज्ञानिक, प्रशासनिक और तकनीकी क्षेत्रों में नई अवधारणाओं के लिए नए शब्दों की आवश्यकता पड़ती है।

किसी भी विकसित भाषा में समय-समय पर अन्य भाषाओं से नए शब्द ग्रहण किए जाते हैं। हिन्दी ने भी अनेक विदेशी तथा भारतीय भाषाओं से शब्द अपनाए हैं।

शब्द-ग्रहण के कारण

विज्ञान एवं तकनीकी विकास

वैश्वीकरण

व्यापार एवं संचार

सांस्कृतिक आदान-प्रदान

शिक्षा का विस्तार

उदाहरण

विदेशी शब्द हिन्दी में प्रचलित रूप

Computer कम्प्यूटर / संगणक

Mobile मोबाइल

Internet इंटरनेट / अंतरजाल

Bank बैंक

Ticket टिकट

यह प्रवृत्ति भाषा को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाती है।

(vii) आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक के अनुरूप विकास

आज भाषा का संबंध केवल साहित्य से नहीं है। विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कंप्यूटर, इंटरनेट, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, अंतरिक्ष-विज्ञान और डिजिटल संचार जैसे क्षेत्रों में भी भाषा का प्रयोग हो रहा है।

इस कारण मानक भाषा में नए विषयों से संबंधित शब्दावली का विकास आवश्यक है।

तकनीकी युग में भाषा के सामने दोहरी चुनौती है—एक ओर उसे स्पष्ट और व्यवस्थित रहना है, दूसरी ओर उसे नए ज्ञान और तकनीकी अवधारणाओं को व्यक्त करने की क्षमता भी वि6

(viii) डिजिटल युग में मानक भाषा की प्रवृत्तियाँ

डिजिटल क्रान्ति ने हिन्दी भाषा के स्वरूप को व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

1. यूनिकोड का प्रयोग

यूनिकोड के कारण हिन्दी का प्रयोग विश्वभर में सरल एवं सुविधाजनक हो गया है।

2. कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence)

एआई आधारित अनुवाद, वाणी-पहचान (Speech Recognition) तथा भाषा-प्रसंस्करण के कारण मानक हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है।

3. ई-लर्निंग एवं ऑनलाइन शिक्षा

ऑनलाइन पाठ्यक्रम, ई-पुस्तकें तथा डिजिटल अध्ययन सामग्री मानक हिन्दी में उपलब्ध कराई जा रही हैं।

कसित करनी है।

डिजिटल माध्यमों ने भाषा के प्रयोग को और अधिक गतिशील बनाया है। सोशल मीडिया और इंटरनेट के कारण नए शब्द, संक्षिप्त रूप और अभिव्यक्ति के नए तरीके तेजी से प्रचलित होते हैं। मानक भाषा इन नए प्रयोगों को पूरी तरह अस्वीकार करने के बजाय उनके उपयोग, स्वीकार्यता और आवश्यकता के आधार पर धीरे-धीरे आत्मसात करती है।

(viii) मानक भाषा और भाषिक विविधता

मानक भाषा के विकास के साथ यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है कि समाज में मौजूद भाषिक विविधता का क्या स्थान है।

भारत एक बहुभाषी और बहुबोली देश है। अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं। प्रत्येक भाषिक रूप अपने साथ इतिहास, संस्कृति, लोकस्मृति और सामाजिक अनुभवों को लेकर चलता है।

मानक भाषा का विकास इन विविध रूपों के अस्तित्व को समाप्त करने के उद्देश्य से नहीं होना चाहिए। मानक भाषा व्यापक संचार की आवश्यकता पूरी करती है, जबकि बोलियाँ और क्षेत्रीय भाषिक रूप स्थानीय पहचान तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को बनाए रखते हैं। इसलिए मानक भाषा और भाषिक विविधता के बीच सह-अस्तित्व और संतुलन आवश्यक है।

9.3.2 वर्तमान समय में मानक भाषा की उपयोगिता

वर्तमान समय में संचार के साधनों का अत्यधिक विस्तार हुआ है। शिक्षा और प्रशासन के साथ-साथ इंटरनेट, समाचार माध्यम, डिजिटल प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन शिक्षा ने भाषा के प्रयोग को व्यापक बना दिया है।

ऐसी स्थिति में मानक भाषा की उपयोगिता निम्न क्षेत्रों में विशेष रूप से दिखाई देती है–

शिक्षा

प्रशासन

साहित्य

पत्रकारिता

डिजिटल संचार

सरकारी दस्तावेज

शोध एवं अकादमिक लेखन

विज्ञान एवं तकनीक

सार्वजनिक सूचना

मानक भाषा संचार में स्पष्टता और अपेक्षाकृत एकरूपता बनाए रखने में सहायता करती है। साथ ही आधुनिक परिस्थितियों में उसकी उपयोगिता तभी बनी रह सकती है जब वह नए ज्ञान और बदलती भाषिक आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित होती रहे।

9.3.3 मानक हिन्दी के विकास में शिक्षा, साहित्य और जनसंचार की भूमिका

मानक हिन्दी के प्रसार में शिक्षा संस्थानों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों तथा शैक्षिक सामग्री के माध्यम से हिन्दी के अपेक्षाकृत व्यवस्थित रूप का प्रसार हुआ।

साहित्य ने भी हिन्दी के स्वरूप को समृद्ध किया। विभिन्न क्षेत्रों के साहित्यकारों ने हिन्दी में स्थानीय शब्दों, मुहावरों और जीवन-अनुभवों को स्थान दिया। इससे हिन्दी की अभिव्यक्ति-क्षमता बढ़ी।

जनसंचार माध्यमों ने मानक हिन्दी को व्यापक समाज तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समाचार-पत्रों, रेडियो, टेलीविजन और डिजिटल माध्यमों ने भाषा के प्रयोग को करोड़ों लोगों तक पहुँचाया।

आज सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म भाषा के नए प्रयोगों को तेजी से प्रसारित कर रहे हैं। इससे मानक हिन्दी के सामने नई संभावनाएँ और नई चुनौतियाँ दोनों उपस्थित हुई हैं।

9.3.4 मानक भाषा के विकास के लिए आवश्यक सुझाव

1. विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में मानक हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाए।2. शुद्ध वर्तनी एवं व्याकरण के नियमों का पालन किया जाए।

3. वैज्ञानिक एवं तकनीकी हिन्दी शब्दावली का निरन्तर विकास किया जाए।

4. मीडिया एवं सोशल मीडिया में मानक हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए।

5. भारतीय भाषाओं एवं बोलियों का सम्मान करते हुए मानक हिन्दी का विकास किया जाए।

6. अनुवाद एवं शोध कार्यों को प्रोत्साहित किया जाए।

7. युवाओं में शुद्ध एवं प्रभावी हिन्दी लेखन की आदत विकसित की जाए।

9.4 अपनी प्रगति जाँचें

प्रश्न 1 मानक भाषा से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न 2 मानक भाषा की कोई दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

प्रश्न 3 - मानक भाषा और बोली में क्या संबंध है?

प्रश्न 4 मानक भाषा में एकरूपता की आवश्यकता क्यों होती है?

प्रश्न 5 मानक भाषा में परिवर्तनशीलता का क्या महत्त्व है?

प्रश्न 6 मानक भाषा के विकास में शिक्षा की क्या भूमिका है?

प्रश्न 7 मानक भाषा और भाषिक विविधता के संबंध को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 8 आधुनिक तकनीक ने मानक भाषा को किस प्रकार प्रभावित किया है?

9.5 सारांश

मानक भाषा भाषा का ऐसा स्वीकृत और व्यवस्थित रूप है जिसका प्रयोग व्यापक सामाजिक तथा औपचारिक क्षेत्रों में किया जाता है। इसमें व्याकरण, वर्तनी और शब्द-प्रयोग की अपेक्षाकृत एकरूपता होती है।

मानक भाषा को केवल शुद्ध भाषा के रूप में नहीं समझना चाहिए। यह सामाजिक स्वीकृति, व्यापक प्रयोग और संचार की आवश्यकता से जुड़ी अवधारणा है।

मानक भाषा और बोली के बीच निकट संबंध है। बोलियाँ भाषा को स्थानीय और सांस्कृतिक आधार प्रदान करती हैं, जबकि मानक भाषा व्यापक संपर्क और औपचारिक संचार में सहायक होती है।

मानक भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियों में एकरूपता, व्याकरण-सम्मतता, बोधगम्यता, व्यापक प्रयोग, स्थिरता और परिवर्तनशीलता का समन्वय, शब्द-ग्रहण, शब्द-निर्माण तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अनुरूप विकास शामिल हैं।

मानक भाषा समय के साथ बदलती रहती है। नए ज्ञान, तकनीक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण इसमें नए शब्द और प्रयोग आते हैं। इसलिए मानक भाषा को गतिशील व्यवस्था के रूप में देखना आवश्यक है।

हिन्दी के संदर्भ में मानक भाषा का विकास शिक्षा, साहित्य, प्रशासन और जनसंचार माध्यमों से गहराई से जुड़ा हुआ है। साथ ही हिन्दी की विभिन्न बोलियाँ और क्षेत्रीय रूप इसकी भाषिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि के महत्त्वपूर्ण आधार हैं।

9.6 मुख्य शब्द

मानक भाषा – समाज द्वारा व्यापक रूप से स्वीकृत और औपचारिक क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा का व्यवस्थित रूप।

मानकीकरण – भाषा के किसी रूप को व्यापक प्रयोग के लिए व्यवस्थित एवं स्वीकृत बनाने की प्रक्रिया।

बोली – किसी भाषा का क्षेत्रीय या सामाजिक रूप, जिसकी अपनी विशिष्ट भाषिक विशेषताएँ होती हैं।

भाषिक विविधता – किसी समाज या क्षेत्र में भाषाओं और बोलियों के अनेक रूपों का विद्यमान होना।

एकरूपता – भाषा के निर्धारित प्रयोगों में अपेक्षाकृत समानता।

बोधगम्यता – भाषा को आसानी से समझ पाने की विशेषता।

व्याकरण-सम्मतता – व्याकरण के स्वीकृत नियमों के अनुरूप भाषा का प्रयोग।

डिजिटल युग सूचना एवं संचार तकनीक का आधुनिक युग

शब्द-निर्माण – नई अवधारणाओं अथवा आवश्यकताओं के अनुसार नए शब्द बनाने की प्रक्रिया।

सर्वग्राह्यता – अधिकाधिक लोगों द्वारा स्वीकार और समझे जाने की क्षमता।

9.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

अ. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मानक भाषा का प्रमुख आधार क्या है?

(क) केवल स्थानीय प्रयोग

(ख) सामाजिक स्वीकृति

(ग) केवल साहित्यिक प्रयोग

(घ) केवल मौखिक प्रयोग

2. मानक भाषा का प्रयोग मुख्यतः किस क्षेत्र में अधिक होता है?

(क) केवल पारिवारिक बातचीत

(ख) केवल लोकगीत

(ग) औपचारिक एवं सार्वजनिक संचार

(घ) केवल स्थानीय बाजार

3. मानक भाषा और बोली का संबंध कैसा है?

(क) पूर्णतः विरोधी

(ख) परस्पर संबंधित

(ग) असंबंधित

(घ) केवल साहित्यिक

4. मानक भाषा में किसका महत्त्व है?

(क) एकरूपता

(ख) अस्पष्टता

(ग) अनिश्चितता

(घ) केवल स्थानीयता

ब. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मानक भाषा की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।

2. मानक भाषा की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

3. मानक भाषा की बोधगम्यता से क्या अभिप्राय है?

4. मानक भाषा में शब्द-ग्रहण का क्या महत्त्व है?

5. मानक भाषा और भाषिक विविधता का संबंध स्पष्ट कीजिए।

स. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मानक भाषा की परिभाषा देते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

2. मानक भाषा और बोली के संबंध पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

3. मानक भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

4. आधुनिक युग में मानक हिन्दी की उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।

5. मानक भाषा के विकास में शिक्षा, साहित्य और जनसंचार माध्यमों की भूमिका पर चर्चा कीजिए।

9.8 अपनी प्रगति जाँचें के उत्तर

1. मानक भाषा भाषा का वह स्वीकृत और व्यवस्थित रूप है जिसका व्यापक सामाजिक एवं औपचारिक प्रयोग होता है।

2. मानक भाषा की प्रमुख विशेषताओं में सामाजिक स्वीकृति, व्यापक प्रयोग, व्याकरण-सम्मतता और एकरूपता शामिल हैं।

3. बोली भाषा का क्षेत्रीय या सामाजिक रूप है, जबकि मानक भाषा व्यापक और औपचारिक संचार के लिए स्वीकृत रूप है। दोनों के बीच निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है।

4. एकरूपता से लिखित और मौखिक संचार में स्पष्टता तथा सुविधा आती है।

5. परिवर्तनशीलता मानक भाषा को बदलती सामाजिक, वैज्ञानिक और तकनीकी आवश्यकताओं के अनुरूप बनाए रखती है।

6. शिक्षा के माध्यम से मानक भाषा के व्याकरण, वर्तनी, शब्दावली और औपचारिक प्रयोग का व्यापक प्रसार होता है।

7. मानक भाषा व्यापक संचार का साझा माध्यम प्रदान करती है, जबकि भाषिक विविधता विभिन्न क्षेत्रों की भाषिक और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखती है।

8. तकनीक ने नए शब्दों, नए संचार-रूपों और नए भाषिक प्रयोगों को तेजी से फैलाया है तथा मानक भाषा के विकास के लिए नई आवश्यकताएँ उत्पन्न की हैं।

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भोलानाथ तिवारी – हिन्दी भाषा की भूमिका।

2. भोलानाथ तिवारी – भाषाविज्ञान।

3. देवेन्द्रनाथ शर्मा – भाषाविज्ञान की भूमिका।

4. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव – हिन्दी भाषा का समाजशास्त्र।

5. उदयनारायण तिवारी – हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास।

6. रामचन्द्र वर्मा – अच्छी हिन्दी।

7. केंद्रीय हिन्दी निदेशालय – हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण संबंधी सामग्री।

8. विश्वविद्‌यालय अनुदान आयोग एवं उच्च शिक्षा से संबंधित उपलब्ध हिन्दी भाषा-अध्ययन सामग्री।

NOTES

NOTES

NOTES